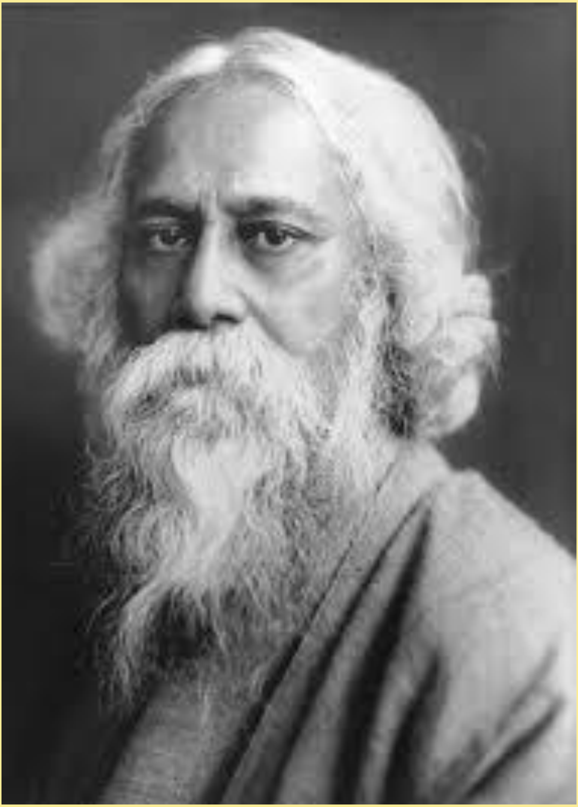
मुकुट



रबीन्द्रनाथ टैगोर



मूल्य—एक रुपया आठ आना

प्रकाशक

चौधरी एण्ड सन्स
बनारस-१.

प्रथम संस्करण
जून '५६

मुद्रक
राष्ट्रभाषा मुद्रणालय
लहरतारा
बनारस—४

१

त्रिपुरा के राजा अमरमाणिक्य के कनिष्ठ पुत्र राजधर ने सेनापति ईसा खाँ से कहा—"देखो सेनापति, मैं तुमको बार-बार कह रहा हूँ, तुम मेरी अप्रतिष्ठा मत किया करो।"

पठान ईसा खाँ कुछ तीरों के फलक सामने रख, उनकी धार की जाँच करने में व्यस्त थे। राजधर की बात सुनकर वे कुछ भी नहीं बोले। उन्होंने केवल मुँह ऊपर उठा, भौंहों को ऊँचाई पर चढ़ा, एक बार उनके मुख पर अपनी दृष्टि डाली, फिर अविलम्ब सिर झुकाकर तीरों के फलकों पर अपना ध्यान जोड़ दिया।

राजधर ने कहा—"यदि भविष्य में फिर कभी तुम मेरा नाम लेकर पुकारोगे, तो मैं उसका समुचित प्रतिकार करूँगा।"

वृद्ध ईसा खाँ सहसा अपना मस्तक ऊपर उठा, वज्र स्वर से बोल उठे—"ठीक ही तो है!"

राजधर अपनी तलवार की म्यान का अग्रभाग फर्श के पत्थर पर ठक् से ठोक कर बोले—"हाँ।"

ईसा खाँ, बालक राजधर की छाती फुलाने की भाव-भङ्गी और उनका तलवार उछालना देखकर स्थिर न रह सके, ठठाकर हँस पड़े। राजधर का समूचा चेहरा, आँखों का सफेद भाग तक लाल हो उठा।

ईसा खाँ ने दोनों हाथ जोड़कर, स्मित हास्य करते हुए कहा—"तो अब महामहिम महाराजाधिराज को क्या कहकर पुकारना पड़ेगा! हुजूर, जनाब, जहाँपनाह, शाहंशाह—"

राजधर ने अपने स्वाभाविक कर्कश स्वर को दूना कर्कश बनाकर कहा—"यह ठीक है कि मैं तुम्हारा छात्र हूँ, किन्तु मैं राजकुमार हूँ—यह बात तो तुमको याद ही नहीं रहती।"

इस बार ईसा खाँ ने तीव्र स्वर में कहा—"बस! चुप रहो। अब अधिक कुछ मत बोलो। मुझे दूसरा काम करना है।" और वे फिर तीरों के फलकों पर ध्यानमग्न हो रहे।

उसी समय त्रिपुरा के द्वितीय राजकुमार इन्द्र अपना दीर्घ, प्रशस्त, बलिष्ठ शरीर लिये कमरे में आकर बोले—"खाँ साहब, आज का क्या समाचार है?"

इन्द्रकुमार की आवाज सुनकर वृद्ध ईसा खाँ ने तीरों के फलक एक तरफ रख दिये, और स्नेहपूर्वक आलिङ्गन कर हँसते-हँसते बोले—"बहुत ही अच्छा समाचार है, बड़ी ही मजेदार बात है। तुम्हारे इस छोटे भाई साहब को महाराज-चक्रवर्ती-जहाँपनाह कहकर न पुकारने से, इनको अपमान मालूम होता है।" यह कहकर वे पुनः तीरों के फलकों पर स्थिर हो काम करने लगे।

"क्या यह सच है।" कहकर इन्द्रकुमार उच्च स्वर में हँसने लगे।

राजधर अत्यन्त कोप के साथ बोले—"चुप रहो भैया।"

इन्द्रकुमार ने कहा—"राजधर, तुमको क्या कहकर पुकारना ठीक होगा। जहाँपनाह! हा हा हा हा।"

राजधर ने काँपते-काँपते कहा—"भैया, चुप रहो, मैं मना करता हूँ।"

इन्द्रकुमार ने फिर हँस कर कहा—"जनाब!"

राजधर ने धीरज खोकर कहा—"भैया, तुम बिलकुल ही नासमझ हो।"

इन्द्रकुमार ने हँसकर राजधर की पीठ थपथपाते हुए कहा—"शान्त हो रहो, भाई, शान्त हो रहो। तुम्हारी बुद्धि तुम्हारे ही पास रहे, मैं उसे छीन लेना नहीं चाहता।"

ईसा खाँ ने क्षणमात्र के लिये अपने कार्य से दृष्टि हटाकर मुस्कराते हुए कहा—

"इस लड़के की बुद्धि अत्यन्त बढ़ गयी है।"

इन्द्रकुमार ने कहा—"इतनी बढ़ गयी है कि वहाँ तक पहुँचा ही नहीं जा सकता।"

राजधर जल्दी-जल्दी पैर पटकते हुए, कमरे से चले गये। उनके पैर की धमक से, म्यान के भीतर की तलवार भी झनझना रही थी।

२

राजकुमार राजधर की अवस्था अब उन्नीस वर्ष की हो चुकी थी। रङ्ग साँवला था। शारीरिक-गठन अच्छी थी। उस युग में अन्य राजकुमार जिस तरह लम्बे-लम्बे बाल रखते थे, वैसे बाल इनके नहीं थे। इनके सीधे-सीधे, मोटे-मोटे बाल, तरतीब से छाँटे गये थे। इनकी दोनों ही आँखें छोटी-छोटी थीं, दृष्टि तीक्ष्ण थी। दाँत बड़े-बड़े थे। गले की आवाज बचपन से ही एक तरह कर्कश ही थी। सबको ऐसा ही विश्वास था कि राजधर की बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण है। उनका अपना विश्वास भी ऐसा ही था। अपनी इसी बुद्धि के जोर पर वे अपने दोनों बड़े भाइयों को अत्यन्त हेय समझते थे। राजधर के प्रबल प्रताप से राजभवन के सभी लोग त्रस्त रहा करते थे। कोई आवश्यकता रहे या न रहे, एक तलवार सदा ही अपने हाथ में वे लिये रहते, और उसे जमीन पर ठोंक-ठोंककर अपना प्रभुत्व दिखाते फिरते थे। राजभवन के जितने भी नौकर-चाकर थे, सभी उनको कभी राजा, कभी महाराजा कहकर दोनों हाथ जोड़ देते थे। कोई सलाम, कोई प्रणाम सम्बोधन से उनको खुश रखने की चेष्टा करता था, फिर भी किसी तरह उन्हें निस्तार नहीं मिलता था। सभी कामों में, सभी बातों में, उनका हाथ रहता था। सभी चीजों पर वे अपना दखल जमाये

रखना चाहते थे। इसके लिये उनकी आँखों में जरा भी संकोच या लज्जा नहीं प्रकट होती थी।

एक बार युवराज चन्द्र नारायण का घोड़ा उन्होंने विधिवत् अपने अधिकार में कर लिया। यह देख युवराज जरा हँस पड़े, कुछ बोले नहीं। दूसरी बार पुनः उन्होंने युवराज इन्द्रकुमार का चाँदी से मढ़ा हुआ एक धनुष दखल कर लिया। इन्द्रकुमार ने इस बार बिगड़कर कहा—"देखो, तुमने जो चीज ले ली है, उसे मैं फिर वापस लेना नहीं चाहता, किन्तु फिर कभी तुम मेरी किसी भी चीज पर हाथ लगाओगे, तो मैं तुम्हारी वह अवस्था कर दूँगा, जिससे तुम अपने हाथ से फिर कोई भी चीज उठा न सकोगे।"

किन्तु राजधर ने, भैया की बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। लोग उनका आचरण देखकर, पीठ पीछे कहते—"छोटे कुमार का जन्म राजघराने में तो जरूर हो गया है, किन्तु राजा के लड़के में जो गुण होने चाहिए, उनमें से एक भी गुण इनमें हम नहीं देख पाते।"

किन्तु महाराज अमरमाणिक्य राजधर को कुछ अधिक प्यार करते थे। राजधर यह बात जानते थे। अतएव आज पिता के पास जाकर उन्होंने ईसा खाँ के नाम नालिश कर दी।

राजा ने ईसा खाँ को बुला भेजा। ईसा खाँ के आने पर वे बोले—"सेनापति, राजकुमारों की उम्र अब बढ़ चली है, वे अब सयाने हो गये हैं। उनलोगों का यथोचित सम्मान करना तुम्हारा कर्तव्य है।"

ईसा खाँ ने कहा—"महाराज बाल्यकाल में, जब मुझसे युद्ध-शिक्षा लिया करते थे, उस समय महाराज का मैं जिस तरह सम्मान

करता था—उससे जरा भी कम सम्मान मैं इन राजकुमारों का नहीं करता।"

राजधर बोले—"मैं अनुरोध करता हूँ कि, तुम मेरा नाम लेकर मत पुकारा करो।"

ईसा खाँ ने बिजली की-सी तेजगति से अपना मुँह फेरकर कहा—"तुम चुप रहो बेटा! मैं तुम्हारे पिता के साथ बातें कर रहा हूँ।—महाराज! धृष्टता क्षमा करें! आपका यह कनिष्ठ पुत्र राजपरिवार के लिए उपयुक्त गुण नहीं पा सका है। इसके हाथ में तलवार शोभा नहीं देती। यह बड़ा होने पर मुंशी की तरह कलम चला सकेगा—किसी भी दूसरे काम में असफल रहेगा।"

ऐसे ही समय में चन्द्र नारायण और इन्द्रकुमार वहाँ आ पहुँचे। ईसा खाँ ने उन दोनों की तरफ घूमकर कहा—"आप दृष्टि उठाकर देख लें महाराज, युवराज वास्तव में यही दोनों कहला सकते हैं। सच्चे राजकुमार ऐसे ही होते हैं।"

राजा ने राजधर की ओर घूमकर कहा—"राजधर, खाँ साहब यह क्या कह रहे हैं। मालूम होता है, तुम अपनी अस्त्र-विद्या से इन्हें सन्तुष्ट नहीं कर सके हो?"

राजधर बोले—"महाराज, हमारी धनुर्विद्या की परीक्षा लेने की व्यवस्था कीजिये, परीक्षा में यदि मुझे सर्वश्रेष्ठ स्थान न मिले, तो आप मुझे त्याग दीजियेगा, मैं राजभवन छोड़कर चला जाऊँगा।"

राजा ने कहा—"अच्छा, अगले सप्ताह में परीक्षा ली जायगी। जो परीक्षा में उत्तीर्ण होगा उसे हीरक-खचित तलवार पुरस्कार में दूँगा।"

३

इन्द्रकुमार धनुर्विद्या में असाधारण थे। ऐसी बात सुनी जाती है कि, एक बार उनके किसी नौकर ने राजभवन की छत से एक अशर्फी नीचे फेंक दी थी, वह अशर्फी जमीन पर गिरने भी नहीं पायी थी कि उसी बीच कुमार ने तीर चलाकर उसे एक सौ हाथ दूर फेंक दिया था।

राजधर क्रोध के आवेश में पिता के सामने दम्भ तो दिखा आये, किन्तु मन में बड़ी ही चिन्ता जम गयी। युवराज चन्द्र नारायण के सम्बन्ध में उनको कोई विशेष चिन्ता नहीं थी। क्योंकि तीर चलाने की विद्या वे अच्छी तरह नहीं जानते थे, किन्तु इन्द्रकुमार से पार पाना असम्भव ही था।

राजधर बहुत कुछ सोचते रहे। अन्त में उन्होंने एक युक्ति निकाल ली। हँसकर मन ही मन बोले—"मैं तीर चला सकूँ या न चला सकूँ, इससे क्या? मेरी बुद्धि तो तीर की तरह है। इसके द्वारा सभी लक्ष्यों का भेद किया जा सकता है।"

परीक्षा का दिन आसन्न है। कल ही परीक्षा होने का दिन नियत है। जिस जगह परीक्षा होगी, उस जमीन की जाँच करने के लिए युवराज, ईसा खाँ और इन्द्रकुमार चले गये हैं।

उनके लौट आने पर, राजधर ने आकर कहा—"भैया, आज

पूर्णिमा है—आज रात को जिस समय बाघ गोमती नदी में जल पीने के लिए जायगा, उसी समय नदी के किनारे बाघ का शिकार करने जाना क्या ठीक न होगा ?"

इन्द्रकुमार ने आश्चर्य में पड़कर कहा—"महान आश्चर्य ! आज राजधर की प्रवृत्ति शिकार की ओर कैसे गयी ?

ईसा खाँ ने राजधर की ओर घृणायुक्त कटाक्ष करते हुए कहा—"क्यों न जायगी, ये तो पक्के शिकारी हैं ? जाल फैलाकर मकान के अन्दर शिकार खेलते हैं। इनका शिकार खेलना बड़ा ही भयङ्कर है। राजसभा में एक भी प्राणी ऐसा नहीं है जो इनके फन्दे में एक न एक बार न पड़ चुका हो।"

चन्द्र नारायण ने देखा, यह बात राजधर के मन में समा गयी है—व्यथित होकर वे बोले—"सेनापति साहब, तुम्हारी तलवार भी जैसी है, तुम्हारी बातें भी वैसी ही हैं। दोनों पर ही शान चढ़ा है, जिसके ऊपर जा पड़ती है, उसका मर्म ही छेद डालती है।"

राजधर ने हँसकर कहा—"नहीं भैया, मेरे लिए तुम ज्यादा चिन्ता मत करो, खाँ साहब बड़ी शान से बातें तो जरूर कहते हैं, किन्तु उनकी बातें मेरे कानों में पक्षी के पंख की तरह फड़-फड़ाकर रह जाती हैं।"

ईसा खाँ हठात् चिढ़ उठे और अपनी पकी हुई मूँछ ऐंठ कर बोले—"तुमको क्या कान भी हैं ? यदि वे रहते तो अब तक तुमको सीधा कर चुका होता।" वृद्ध ईसा खाँ किसी को भी विशेष मान्यता नहीं देते थे।

इन्द्रकुमार ठठाकर हँस पड़े। चन्द्र नारायण गम्भीर हो रहे, कुछ बोले नहीं। यह समझ कर कि युवराज नाराज हो गये हैं, इन्द्रकुमार उसी क्षण अपनी हँसी को रोककर उनके पास जाकर

मीठे स्वर से बोले—"भैया, तुम्हारा मत क्या है। आज रात शिकार को चलोगे?"

चन्द्रनारायण ने कहा—"तुम्हारे साथ, भाई, शिकार खेलने जाना व्यर्थ ही है, क्योंकि जाने से नितान्त निरामिष ही शिकार करना पड़ता है। तुम जब वन में जाते हो तो सभी जानवरों को मार कर ले आते हो, और हम केवल लौकी, कोंहड़ा, कटहल का ही शिकार करके लौट आते हैं।"

ईसा खाँ परम सन्तुष्ट होकर हँसने लगे। स्नेह के साथ इन्द्र-कुमार की पीठ पर थपकी लगाकर बोले—"युवराज ठीक कह रहे हैं बेटा! तुम्हारा तीर सबके पहले ही छूट जाता है और एकदम मर्मस्थान पर जा लगता है। तुमसे भला कौन पार पा सकेगा।"

इन्द्रकुमार ने कहा—"नहीं नहीं भैया, यह कोई मजाक नहीं है—चलना पड़ेगा। तुम न चलोगे, तो और कौन शिकार खेलने जायगा।"

युवराज ने कहा—"अच्छा चलो। आज राजधर की इच्छा यही हुई है, तो मैं उसको निराश न करूँगा।"

हँसते हुए इन्द्रकुमार क्षणमात्र में म्लान होकर बोले—"क्यों भैया, मेरी इच्छा हुई है, इस कारण क्या न जाना चाहिये।"

चन्द्रनारायण ने कहा—"नहीं, नहीं, ऐसा भी क्या! तुम्हारे साथ तो मैं रोज ही शिकार में जाया करता हूँ।"

इन्द्रकुमार ने कहा—"इसीलिए क्या वह पुरानी बात हो गयी है।"

चन्द्रनारायण ने विषण्ण होकर कहा—"तुम मेरी बातों को इस तरह उलटा समझते हो तो मुझे इससे बड़ी व्यथा पहुँचती है।"

इन्द्रकुमार हँसकर झटपट बोले—"नहीं भैया, मैं तो मजाक कर रहा था। शिकार में न जाऊँगा तो क्या करूँगा। चलो इसके लिए तैयारी करें।"

ईसा खाँ मन ही मन बोले—"इन्द्रकुमार अपनी छाती पर दस बाणों को झेल सकता है, किन्तु अपने भैया का जरा-सा भी अनादर नहीं सह सकता।"

४

शिकार की सारी व्यवस्था ठीक हो जाने पर राजधर धीरे-धीरे इन्द्रकुमार की स्त्री कमलादेवी के कक्ष में जा पहुँचे। कमलादेवी ने हँसकर कहा—"यह क्या कुमार जी, एकदम धनुष-बाण, वर्म-चर्म लेकर कैसे आ गये? मुझे मारोगे क्या?"

राजधर बोले—"भाभी जी, हम तीनों भाई आज शिकार खेलने जायेंगे, इसीलिए मेरा यह वेश है।"

कमलादेवी ने आश्चर्य में पड़कर कहा—"तीनों भाई! क्या तुम भी जाओगे? आज तीनों भाइ साथ-साथ ही जाओगे, यह तो कोई अच्छा लक्षण नहीं दिखाई पड़ता। यह तो त्र्यहस्पर्श हो गया।"

मानो अच्छा मजाक उड़ाया गया हो, इस प्रकार के भाव से राजधर ठठाकर हँसने लगे, किन्तु विशेष कुछ नहीं बोले।

कमलादेवी ने कहा—"नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता। रोज-रोज वे शिकार करने जायँगे, और मैं अपने कमरे में बैठकर मरती रहूँगी।"

राजधर ने कहा—"आज फिर रात के समय ही शिकार होगा।"

कमलादेवी ने सिर हिलाकर कहा—"ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। मैं देखूँगी कि वे आज कैसे जाते हैं।"

राजधर बोले—"भाभी जी, तुम एक काम करो। धनुष-बाणों को कहीं छिपाकर रख दो।"

कमलादेवी ने कहा—"कहाँ छिपाऊँ?"

राजधर बोले—"मुझे दे दो, मैं ही छिपाकर रख दूँगा।"

कमलादेवी ने हँसकर कहा—"यह कोई बुरा विचार नहीं है। एक खासा कौतुक हो जायगा।" परन्तु क्षणमात्र के लिये मन ही मन उन्होंने प्रश्न किया—"तुम्हारे मन में कोई गुप्त उद्देश्य तो निहित नहीं है? मेरा उपकार करने आये हो, ऐसा तो मुझे नहीं जान पड़ता। स्वस्थ होकर बोलीं—

"आओ, अस्त्रशाला में आओ।" कहकर कमलादेवी राजधर को अपने साथ ले गयीं।

ताली लेकर उन्होंने अस्त्रशाला का दरवाजा खोल दिया। राजधर ने ज्योंही कोठरी में प्रवेश किया, त्योंही कमलादेवी ने दरवाजा बन्द कर, ताला लगा दिया। राजधर उस कोठरी में बन्द हो रहे। कमलादेवी ने बाहर से हँसकर कहा—"कुँवर जी, मैं यहाँ से अब जा रही हूँ।"

और वे चली गयीं।

इधर सन्ध्या हो जाने पर इन्द्रकुमार अन्तःपुर में आये, और

अस्त्रशाला की ताली ढूँढ़ने लगे, किन्तु वह कहीं भी नहीं मिल रही थी। कमलादेवी ने हँसते-हँसते कहा—"क्यों जी, मुझे ही शायद तुम ढूँढ़ रहे हो, मैं तो कहीं खो नहीं गयी हूँ।"

शिकार का समय व्यतीत होता देख, इन्द्रकुमार बहुत ही घबड़ाहट में पड़ गये। वे अत्यधिक व्यस्तता से ताली ढूँढ़ने में तत्पर हो गये। कमलादेवी उनको रोककर, उनके मुँह के सामने जा खड़ी हुईं—हँसते-हँसते बोलीं—"क्यों जी, तुमको क्या कुछ दिखाई नहीं पड़ता। आँखों के सामने ही है, फिर भी पूरा मकान हिला दे रहे हो।"

इन्द्रकुमार ने कुछ कातर स्वर से कहा—"देवी! अब तंग न करो—मेरी एक बहुत ही आवश्यक चीज खो गयी है।"

कमलादेवी ने कहा—"मैं जानती हूँ कि तुम्हारी कौन-सी चीज खो गयी है। तुम यदि मेरी एक बात मान लो, तो मैं तुम्हारी उस चीज को ढूँढ़ कर ला दूँगी।"

इन्द्रकुमार ने कहा—"अच्छा मैं तुम्हारी बात मानूँगा।"

कमलादेवी ने कहा—"तो सुनो! आज तुम शिकार करने नहीं जाने पाओगे। यह लो अपनी ताली।"

इन्द्रकुमार ने कहा—"यह नहीं हो सकता। मैं इस बात को नहीं मानूँगा।"

कमलादेवी बोलीं—"चन्द्रवंश में जन्म लेकर तुम्हारा क्या ऐसा ही आचरण है। एक सामान्य प्रतिज्ञा का भी पालन नहीं कर सकते।"

इन्द्रकुमार ने हँसकर कहा—"अच्छा तुम्हारी ही बात रह गयी। आज मैं शिकार में न जाऊँगा।"

कमलादेवी—"क्या तुम्हारी और कोई चीज खो गयी है? तुम स्मरण करके देख लो तो भला।

इन्द्रकुमार—नहीं, मुझे तो कुछ भी स्मरण नहीं होता।

कमलादेवी—तुम्हारा परम प्यारा सुनहला चाँद? तुम्हारा परम धन? तुम्हारा माणिकरत्न? अरे, कुछ भी तो याद करो।

इन्द्रकुमार ने मुस्कुराहट के साथ सिर हिला दिया। कमलादेवी ने कहा—"तो आओ, देख लो।" यह कह, वे अस्त्रशाला के द्वार पर गयीं। इसके बाद उन्होंने द्वार खोल दिया।

कुमार ने देखा, राजधर कोठरी की फर्श पर चुपचाप बैठे हुए हैं। देखते ही खिलखिलाकर हँसने लगे। बोले—"यह क्या? राजधर, तुम अस्त्रशाला में कैसे?"

कमलादेवी ने कहा—"ये हमारे ब्रह्मास्त्र हैं।"

इन्द्रकुमार ने कहा—"यह तो ठीक ही है, वे सभी अस्त्रों से बढ़कर तेज हैं।"

राजधर मन ही मन बोले—"तुम लोगों की जीभ से बढ़कर नहीं।"

राजधर कोठरी से बाहर निकल आये।

तब कमला देवी ने गम्भीर होकर कहा—"कुँवर जी, तुम शिकार करने के लिए जा सकते हो। मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा लौटा देती हूँ।"

"अच्छा, मैं शिकार खेलूँ? अच्छी बात है।" कहकर इन्द्रकुमार ने धनुष पर तीर चढ़ा कर अत्यन्त धीरे-से कमलादेवी की तरफ छोड़ दिया। तीर उनके पैरों के पास जा गिरा।

कुमार ने कहा—"मेरा लक्ष्य चूक गया।"

कमला देवी ने कहा—"नहीं, परिहास से काम नहीं चलेगा, तुम शिकार खेलने जाओ।"

इन्द्रकुमार कुछ भी नहीं बोले, धनुष-बाण कमरे में फेंक कर बाहर चले गये।

युवराज से उन्होंने कहा—भैया, आज शिकार के लिये जाना सम्भव नहीं।"

चन्द्र नारायण मुसकुरा कर बोले—"मैं समझ गया।"

५

आज परीक्षा का दिवस है। राज भवन के बाहरी मैदान में बहुत से लोग जमा हो गये हैं। राजा का छत्र और सिंहासन प्रभात के प्रकाश से चमक रहे हैं। यह जगह पहाड़ी है, ऊबड़-खाबड़ है। लोगों की भीड़ से ठसाठस भर चुकी है, चारो तरफ मानो मनुष्यों के मस्तकों की लहरें उठ पड़ी हैं। लड़के पेड़ों के ऊपर चढ़कर बैठे हुए हैं। एक लड़के ने पेड़ की डाल से धीरे-धीरे अपने हाथ बढ़ाकर एक मोटे मनुष्य के सिर से उनकी पगड़ी उतार एक दूसरे के सिर पर पहना दी। जिसकी पगड़ी है, वह बिगड़ कर लड़के को पकड़ने के लिए निष्फल प्रयास कर रहा है, अन्त में निराश होकर पेड़ की डाल को जोर से हिला रहा है। वह लड़का चिढ़ाता हुआ डाल के ऊपर बन्दर की तरह उछल-कूद रहा है।

उस मोटे मनुष्य का क्रोधित होना और उसकी दुर्दशा देखकर, उस तरफ एक हँसी का फव्वारा छूट चला है।

एक मनुष्य अपने माथे पर एक हँड़िया में दही लेकर अपने घर जा रहा था। रास्ते में जनता की भाड़ देख वह खड़ा हो गया। अकस्मात् उसने देखा कि माथे पर हाँड़ी नहीं है। उसकी हाँड़ी क्षणभर में ही हाथो-हाथ कितनी दूर चली गयी इसका ठिकाना नहीं हैं। दही वाला थोड़ी देर तक मुँह बाये ताकता रहा।

एक आदमी ने कहा—"भाई, तुम तो दही के बदले मट्ठा ही पी गये। थोड़ा-सा नुकसान ही तो हुआ।"

दही वाला परम सान्त्वना पाकर शान्त हो रहा।

हारू नाई के ऊपर समूचे गाँव के लोग नाराज थे। उसको जनता की भीड़ में देखकर, लोग उसके नाम का गीत गाते हुए मजाक उड़ाने लगे। वह जितना ही चिढ़ने लगा, चिढ़ाने वालों की संख्या उतनी ही बढ़ने लगी। चारो तरफ धड़ाधड़ तालियाँ पीटी जाने लगीं। अट्ठावन प्रकार की आवाज निकलने लगी। वह बेचारा अपने चेहरे को विकृत कर, नेत्रों को लाल बना, मारे पसीने से लथपथ हो, अपनी चादर को भूमि पर गिरा, एक पैर का चप्पल भीड़ में खोकर, सारे संसार के लोगों को अभिशाप देता हुआ, अपने घर चला गया।

जनता की ठसाठस भरी हुई भीड़ के बीच कितने ही छोटे-छोटे बच्चे अपने आत्मीय-स्वजनों के कंधे पर चढ़ रोने लगे हैं। कितने ही स्थान पर ऐसा शोरगुल उठ पड़ा है कि उसका वर्णन हो नहीं किया जा सकता। अकस्मात् नौबत बजने लगी। सारे कोलाहल को उड़ाकर जय-जय ध्वनि से आकाश प्लावित हो गया। गोद के जितने भी बच्चे थे, भय के मारे एक एक ही साथ रो उठे। गाँव-गाँव

में, मुहल्ले-मुहल्ले में कुत्ते ऊपर को मुँह उठाये भूँकने लगे। जितने ही पत्ती थे, पेड़ की डालियों को छोड़कर आकाश में उड़ गये; केवल थोड़ी-सी संख्या में बुद्धिमान कौए बहुत दूर के वृक्ष की डाल पर बैठकर, दायीं और बायीं ओर अपनी गरदन को झुका-झुकाकर एकाग्रचित्त से बहुत कुछ सोच-विचार करने लगे, और एक सिद्धान्त पर पहुँच जाने के साथ ही असन्दिग्ध चित्त से 'काँव-काँव' बोलने लगे।

राजा आकर सिंहासन पर बैठे हुए हैं। इष्ट-मित्र और सभासद गण आ गये हैं। पताकाएँ लिये झण्डा फहराने वाले आ गये हैं। भाटों का आगमन हो गया है। सैन्यगण पीछे कतार बाँधकर खड़े हो गये हैं। बाजे वाले सिर हिला-हिलाकर, नाचते हुए दल के साथ परमोत्साह से ढोल बजाने लगे हैं। महा धूम मच गयी है।

जब परीक्षा आरम्भ करने का समय हो गया, तब ईसा खाँ ने राजकुमारों को तैयार हो जाने का निर्देश किया। इन्द्रकुमार ने युवराज से कहा—"भैया, आज तुमको विजयी होना पड़ेगा, ऐसा न होने से काम न चलेगा।"

युवराज ने हँस कर कहा—"क्यों न चलेगा? मेरा एक छोटा-सा तीर लक्ष्यभ्रष्ट हो भी जाय, तो यह संसार पहले जिस प्रकार चल रहा था, उसी प्रकार चलता रहेगा। और यदि वह न भी चले, तो भी मैं अपनी जीत की कोई सम्भावना नहीं देख रहा हूँ।"

इन्द्रकुमार ने कहा—"भैया, यदि तुम हार जाओगे, तो उस हालत में, मैं भी इच्छापूर्वक लक्ष्यभ्रष्ट हो जाऊँगा।"

युवराज ने इन्द्रकुमार का हाथ पकड़कर कहा—"नहीं भाई, तुम लड़कपन मत करो—उस्ताद की इज्जत की रक्षा करनी पड़ेगी।"

राजधर विवर्ण, शुष्क-चिन्ताकुल चेहरे से चुपचाप खड़े रहे।

ईसा खाँ ने आकर कहा—"युवराज, समय हो गया, तुम अपना धनुष ले लो।"

युवराज ने देवता का नाम लेकर धनुष उठा लिया। प्रायः दो सौ हाथ की दूरी पर कदली-वृक्ष के पाँच-छः तने एक साथ बाँध कर खड़े कर दिये गये थे। मध्य भाग में अरुई की पत्तियाँ आँख की तरह सटा दी गयी थीं। उसके ठीक बीचो-बीच आँखों के तारे की तरह आकार बनाकर काला दाग अंकित किया गया था। वही दाग लक्ष्य का स्थान है। दर्शकगण अर्धचन्द्राकार पंक्ति में, मैदान को घेर कर खड़े हैं। जिस तरफ लक्ष्य स्थापित है, उस तरफ जाने का निषेध है।

युवराज ने धनुष पर बाण चढ़ा दिया—लक्ष्य को स्थिर किया और बाण छोड़ दिया। बाण लक्ष्य के ऊपर से चला गया। ईसा खाँ ने दाढ़ी-मूँछ समेत अपने मुख को विकृत बना लिया, पकी हुई भौंहों को सिकोड़ लिया। किन्तु मुँह से वे कुछ भी नहीं बोले। इन्द्रकुमार ने विषादग्रस्त होकर ऐसा भाव धारण किया मानो उनको ही लज्जित करने के लिए भैया ने यह कीर्त्ति कर डाली है। अस्थिरभाव से धनुष को हिलाते-हिलाते उन्होंने ईसा खाँ से कहा—"भैया मन लगने से ही सब कुछ कर सकते हैं, किन्तु किसी तरह भी किसी काम में उनका मन नहीं लगता।"

ईसा खाँ ने विरक्त होकर कहा—"तुम्हारे भैया की बुद्धि और सभी स्थानों में अपना प्रभाव दिखाती है, केवल तीर के अग्रभाग पर उसका प्रभाव नहीं रहता। इसका कारण यह है कि बुद्धि वैसी सूक्ष्म नहीं है।"

इन्द्रकुमार बहुत ही चिढ़कर उत्तर देने जा रहे थे। ईसा ख समझ गये। वे तेज गति से वहाँ से हटकर राजधर के पास गये और उससे बोले—"कुमार, इस बार तुम लक्ष्यभेद करो, महाराज देखें।"

राजधर बोले—"पहले भाई साहब की परीक्षा हो जाय।"

ईसा खाँ ने रुष्ट होकर कहा—"अभी उत्तर देने का समय नहीं है। मेरा आदेश पालन करो।"

राजधर चिढ़ गये, किन्तु कुछ भी नहीं बोले। धनुष-बाण को उन्होंने उठा लिया। लक्ष्य को स्थिर कर बाण छोड़ दिया। तीर जाकर मिट्टी में बिंध गया। युवराज ने राजधर से कहा—"तुम्हारा बाण बहुत ही निकट चला गया है, कुछ ही और बढ़ गया होता मानो लक्ष्य बिंध गया होता।"

राजधर ने अम्लान चेहरे से कहा—"लक्ष्य तो बिंध गया है, दूर से स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ता।"

युवराज ने कहा—"नहीं, तुम्हारी दृष्टि को भ्रम हो गया है, लक्ष्य बिद्ध नहीं हुआ है।"

राजधर ने कहा—"हाँ, बिद्ध हुआ है। निकट जाने से ही वह दिखाई पड़ेगा।"

युवराज ने फिर कुछ भी नहीं कहा।

अन्त में ईसा खाँ के आदेशानुसार इन्द्रकुमार ने नितान्त अनिच्छा के साथ धनुष को उठा लिया। युवराज ने उनके पास जाकर कातर स्वर से कहा—"भाई, मैं असमर्थ हूँ—मेरे ऊपर क्रोध करना तुम्हारे लिए अनुचित है—तुम यदि आज लक्ष्यभेद न कर सकोगे, तो उस हालत में तुम्हारा भ्रष्ट-लक्ष्य तीर मेरे हृदय को विदीर्ण कर देगा, यह निश्चित रूप से जान लो।"

इन्द्रकुमार ने युवराज की चरणधूलि माथे पर चढ़ाकर कहा—"भैया! तुम्हारे आशीर्वाद से आज मैं लक्ष्यभेद करूँगा, इसकी अन्यथा न होगी।"

इन्द्रकुमार ने तीर छोड़ दिया, लक्ष्य बिंध गया। बाजे बजने लगे। चारों तरफ जयध्वनि उठ पड़ी। युवराज ने जिस समय इन्द्रकुमार को आलिङ्गन किया, उस समय आनन्द से इन्द्रकुमार के नेत्रों में आँसू छलछला उठे। ईसा खाँ ने परम स्नेह के साथ कहा—"बेटा, अल्लाह की कृपा से तुम दीर्घजीवी हो रहो।"

महाराज जिस समय इन्द्रकुमार को पुरस्कार देने का उद्योग कर रहे थे, उसी समय राजधर ने उनके पास जाकर कहा—"महाराज, आप लोगों को यह भ्रम हो गया है। मेरा तीर लक्ष्य भेद कर चुका है।"

महाराज ने कहा—"कभी नहीं!"

राजधर ने कहा—"महाराज, निकट जाकर जाँच करके देख लीजिये।"

सभी लक्ष्य के निकट चले गये। वहाँ जाने पर सभी ने देखा कि जो तीर मिट्टी पर बिंधा है, उसके फलक के ऊपर इन्द्रकुमार का नाम खुदा है, और जिस तीर से लक्ष्य बिंध गया है, उसके ऊपर राजधर का नाम खुदा हुआ है।

राजधर ने कहा—"आप विचार कीजिये, महाराज।"

ईसा खाँ ने कहा—"निश्चय ही तूण बदला गया है।"

किन्तु परीक्षा करने से दिखाई पड़ा कि तूण नहीं बदला है। सभी एक दूसरे के मुख की तरफ देखने लगे।

ईसा खाँ ने कहा—"फिर परीक्षा करके देख लिया जाय।"

राजधर ने बहुत ही अभिमान करके कहा—"इसपर मैं सहमत नहीं हो सकता।"

यह तो मेरे प्रति अन्याय है। मुझपर अनुचित रीति से अविश्वास किया जा रहा है। मैं कोई पुरस्कार नहीं चाहता, मध्यम कुमार बहादुर को ही पुरस्कार दिया जाय।'

यह कहकर उन्होंने पुरस्कार की तलवार इन्द्रकुमार की तरफ बढ़ा दी।

इन्द्रकुमार अतिशय घृणा के भाव से बोल उठे—"धिक्कार है। तुम्हारे हाथ से यह पुरस्कार कौन ले सकता है। इसे तुम ही ले लो।"—यह कहकर उन्होंने तलवार को झनझन शब्दों के साथ राजधर के पैरों के पास फेंक दिया। राजधर ने हँसकर नमस्कार किया और तलवार उठा ली।

तब इन्द्रकुमार ने काँपते हुए स्वर से पिता से कहा—"महाराज, अराकान पति के साथ शीघ्र ही युद्ध होने वाला है। उस युद्ध में जाकर मैं पुरस्कार लाऊँगा। महाराज, आप आदेश दीजिये।"

ईसा खाँ ने इन्द्रकुमार का हाथ पकड़ कर कठोर स्वर से कहा—"तुमने आज महाराज का अपमान किया है। उनकी तलवार लेकर तुमने फेंक दी है। इसका समुचित दण्ड आवश्यक है।"

इन्द्रकुमार ने बलपूर्वक अपना हाथ छुड़ाकर कहा—"वृद्ध, तुम मुझे स्पर्श मत करो।"

वृद्ध ईसा खाँ ने सहसा विषादग्रस्त होकर क्षुब्ध स्वर से कहा—"बेटा, यह क्या बेटा? मेरे साथ ऐसा व्यवहार? तुम आज अपने आपको भूल गये, बेटा।"

इन्द्रकुमार के नेत्रों में आँसू उमड़ उठे। उन्होंने कहा—

"सेनापति साहब, मुझे माफ करो, मैं यथार्थ रूप से ही अपने आप को भूल गया हूँ।"

युवराज ने स्नेह के स्वर से कहा—"शान्त हो रहो, भाई—घर लौट चलो।"

इन्द्रकुमार ने पिता के चरणों की धूल लेकर कहा—"पिताजी, मेरा अपराध आप क्षमा करें।" घर लौटते समय उन्होंने युवराज से कहा—"भैया, आज सचमुच ही मेरी पराजय हो गयी है।"

राजधर कैसे जीत गये, इस बात को कोई भी न समझ सका।

६

राजधर ने परीक्षा दिवस के पहले जिस समय कमलादेवी की सहायता से इन्द्रकुमार की अस्त्रशाला में प्रवेश किया था, उसी समय इन्द्रकुमार के तूण से इन्द्रकुमार का नामाङ्कित एक तीर लेकर अपने तूण में रख लिया था, और अपने नाम का अङ्कित एक तीर इन्द्रकुमार के तरकस में ऐसे स्थान पर, ऐसी अवस्था में रख दिया था, कि वही तीर सहज ही में सबसे पहले उनके हाथ में आ सके। राजधर ने जैसा सोच रक्खा था, वैसा ही हो गया। दैवचक्र से इन्द्रकुमार ने राजधर द्वारा रखा तीर ही उठा लिया था—इसी कारण परीक्षा-स्थल पर ऐसी गड़बड़ी हो गयी थी। कुछ समय

बीत जाने पर जब पूरी परिस्थिति ने शान्त भाव धारण कर लिया, तब इन्द्रकुमार राजधर की चतुरता कुछ-कुछ समझ सके थे। उन्होंने और किसी से यह बात नहीं बतायी—किन्तु राजधर के प्रति उनकी घृणा और भी दुगुनी बढ़ गयी।

इन्द्रकुमार महाराज के पास जाकर बार-बार कहने लगे—"महाराज, हमें अराकान पति के साथ होने वाले युद्ध में भेज दीजिये।"

महाराज बहुत ही सोच-विचार में पड़ गये।

हम जिस समय का घटना का वर्णन कर रहे हैं, वह तीन सौ वर्ष पूर्व की है। उन दिनों त्रिपुरा स्वाधीन था और चटगाँव त्रिपुरा के आधीन था। अराकान चटगाँव से सटा हुआ देश है। अराकान-पति कभी-कभी चटगाँव पर आक्रमण करते रहते थे। इसीलिए अराकान के साथ त्रिपुरा का कभी-कभी विवाद छिड़ जाता था। अमरमाणिक्य के साथ अराकानपति का सम्प्रति ऐसा ही एक विवाद उपस्थित हुआ है। युद्ध की सम्भावना देखकर इन्द्र-कुमार ने युद्ध में जाने का प्रस्ताव रक्खा है।

राजा ने बहुत सोच-विचार के पश्चात् सम्मति दे दी। तीनों भाई पाँच-पाँच हजार सेना साथ लेकर अर्थात् कुल पन्द्रह हजार सेना सहित चटगाँव की ओर चल पड़े। ईसा खाँ सेनापति के रूप में साथ थे।

कर्णफूली नदी के पश्चिमी तट पर शिविर स्थापित किया गया। अराकान की सेना कुछ तो उस पार थी, कुछ इस पार। अराकान-पति अल्पसंख्यक सेना के साथ नदी के उस पार जमे हुए थे। और शेष उनकी बाईस हजार सेना युद्ध के लिए तैयार होकर आक्रमण की प्रतीक्षा में नदी के पश्चिमी तट पर ठहरी हुई थी।

युद्ध का मैदान पर्वतों से परिपूर्ण है। आमने-सामने दो पहाड़ों के ऊपर दोनों पक्षों की सेना का शिविर है। यदि उभय पक्ष युद्ध करने को अग्रसर हो जाते हैं तो उस परिस्थिति में, बीच की उपत्यका में दोनों सेनाओं में संघर्ष उपस्थित हो सकता है। विशाल वान्य-वृक्षों से पर्वतमालायें आच्छादित हैं। कहीं-कहीं ग्रामवासियों के खाली मकान पड़े हुए हैं, वे लोग अपने घरों को छोड़कर भाग गये हैं। कहीं-कहीं फसलों के खेत हैं। उन खेतों में पहाड़ी जाति के लोग धान, कपास, तरबूज, आलू एक ही साथ बो गये हैं। इसके सिवा, किसी-किसी स्थान पर जुमिया जाति के कृषकों ने एक-एक पहाड़ को पूरा जलाकर काला बना दिया है, ताकि वर्षा ऋतु के बीत जाने पर वहाँ शस्य बो दिये जायँ। दक्षिण दिशा में कर्णफूली नदी है, बाम दिशा में दुर्गम पर्वत है।

इसी स्थान पर प्रायः एक सप्ताह से उभय पक्ष एक दूसरे पर आक्रमण करने की प्रतीक्षा में है। इन्द्रकुमार युद्ध के निमित्त अस्थिर हो गये हैं, किन्तु युवराज की इच्छा है कि दूसरे पक्ष के, अर्थात् शत्रु पक्ष के ही लोग पहले आक्रमण करें। इसीलिए विलम्ब हो रहा है। किन्तु वे लोग भी हिलना नहीं चाहते, स्थिर होकर पड़े हुए हैं। अन्त में आक्रमण करना ही स्थिर हुआ।

सारी रात आक्रमण का आयोजन चलता रहा। राजधर ने प्रस्ताव किया—"भैया, तुम दोनों भाई अपनी दस हजार सेना लेकर आक्रमण करो। मेरी पाँच हजार सेना सुरक्षित रहे, आवश्यकता के समय यह सेना मैदान में कूद पड़ेगी।"

इन्द्रकुमार ने हँसकर कहा—"राजधर दूर रहना चाहते हैं।"

युवराज ने कहा—"नहीं, यह कोई हँसने योग्य बात नहीं

है। राजधर का प्रस्ताव मुझे अच्छा मालूम हो रहा है।" ईसा खाँ ने समर्थन किया। राजधर का प्रस्ताव मान लिया गया।

युवराज और इन्द्रकुमार के अधीन दस हजार सेना पाँच भागों में बाँट दी गयी। प्रत्येक भाग में दो हजार के क्रम से सेना रक्खी गयी। निश्चय किया गया कि एकदम ही शत्रु व्यूह के पाँच स्थानों में आक्रमण कर, व्यूहभेद करने की चेष्टा की जाय। सबसे प्रथम पंक्ति में धनुषधारी लोग थे। उनके पश्चात् तलवार, बर्छे आदि लेकर पदातिक सैनिकों का दल रक्खा गया, और सबके पीछे अश्वारोहीगण पंक्तिबद्ध हो, चल पड़े।

अराकान के मग सैनिकों ने बाँसों की एक बहुत बड़ी झाड़ी के पीछे व्यूह की रचना की थी। प्रथम दिन के आक्रमण का कुछ भी फल नहीं हुआ। त्रिपुरा की सेना व्यूहभेद न कर सकी।

७

दूसरे दिन सारा दिन निष्फल युद्ध होता रहा। उसका अवसान होने पर जब अर्धरात्रि हो गयी, जब उभय पक्ष के सैनिक विश्राम कर रहे थे, जब दोनों पहाड़ों के ऊपर वाले दोनों शिविरों में जहाँ-तहाँ केवल अग्नि-कुण्ड जल रहे थे और जब गीदड़ों के झुण्ड रणक्षेत्र में मृत शरीरों के बीच जब-तब एक ही साथ विलाप कर

उठते थे—तभी शिविर से दो कोस की दूरी पर राजधर अपनी पाँच हजार सेना के सहयोग से नावों को कतारों में बाँध कर, कर्णफूली नदी के ऊपर एक सेतु का निर्माण कर चुके थे। बिना मशाल जलाये, बिना शब्दोच्चारण के, वह पुल के ऊपर से सतर्कतापूर्वक अपनी सेना को उस पार ले जा रहे थे। अधोभाग से अँधेरी नदी का स्रोत जिस तरह बहता जा रहा है, उसी प्रकार पुल के ऊपर से मनुष्यों का स्रोत अविच्छिन्न रूप से चला जा रहा है। उस पार के पर्वतमय दुर्गम करारे की परवाह न करते हुए सैनिकगण अतिकष्ट से ऊपर चढ़ते जा रहे हैं। राजधर के प्रति सैनाध्यक्ष ईसा खाँ का यह आदेश था कि राजधर रात्रि के समय अपने सैनिकों को लेकर नदी के मार्ग से उत्तर तरफ जाकर विपक्षी सेना के पिछले भाग के मार्ग को अवरुद्ध कर देंगे। प्रभात काल होते ही युवराज और इन्द्रकुमार सम्मुख भाग पर आक्रमण करेंगे। जब शत्रुपक्ष शिथिल होता दीख पड़ेगा, तभी सङ्केत मिलने पर राजधर सहसा पृष्ठभाग पर आक्रमण कर देंगे। इसी कारण इतनी नौकाओं का बन्दोबस्त किया गया था। किन्तु राजधर ईसा खाँ के आदेश की अवहेलना कर सेना को उस पार ले गये। साथ ही उन्होंने एक और कौशल का सहारा लिया। अपनी इस योजना को उन्होंने किसी पर प्रकट नहीं किया। वे चुपचाप अराकान के राजा के शिविर की ओर बढ़ गये। चारो तरफ पर्वत हैं, मध्य भाग में उपत्यका है, राजा का शिविर उसी के ही बीच अवस्थित है। शिविर में निर्भयता के साथ सब लोग निद्राभिभूत हैं। जहाँ-तहाँ अग्निशिखा दिखाई पड़ने से शिविर के स्थान का पता चल रहा है।

पर्वतों के ऊपर से, बीहड़ वनों के भीतर से, राजधर के पाँच

हजार सैनिक अति सावधानी के साथ उपत्यका की तरफ उतरने लगे—वर्षा काल में जिस तरह पर्वतों के सर्वाङ्गों से वृक्षों की जड़ों को धोती हुई जल की धारा उतरती रहती है—उसी प्रकार पाँच सहस्र मनुष्यों की पाँच सहस्र तलवारें, अन्धकार के बीच, वृक्षों के निचले भाग से सहस्र पथों से टेढ़ी-मेढ़ी घूमती हुई मानो नीचे की तरफ झरती हुई गिरने लगीं। जरा भी शब्द नहीं हो रहा था, गति मन्द थी। सहसा पाँच सहस्र सैनिकों का चीत्कार उठ पड़ा। छोटा-सा शिविर मानो विदीर्ण हो गया और भीतर से अस्त-व्यस्त अवस्था में सैनिक धीरे-धीरे बाहर निकलने लगे। किसी ने समझा यह दुःस्वप्न है, किसी ने समझा प्रेतों का उत्पात है, किसी की समझ में कुछ भी नहीं आया कि यह क्या हो रहा है।

राजा बिना रक्तपात के कैद कर लिये गये।

राजा ने कहा—"मुझे कैद करने से या मेरा वध करने से युद्ध का अवसान न होगा। मेरे बन्दी हो जाने पर मेरा भाई हामचुपामू राजपद प्राप्त कर लेगा। और युद्ध जैसे चल रहा था वैसे ही चलता रहेगा। इसलिये अच्छा तो यही होगा कि मैं अपनी पराजय स्वीकार कर सन्धिपत्र लिख दूँ। आप मुझे मुक्त कर दीजिये।"

राजधर सहमत हो गये। अराकान-राज ने पराजय स्वीकार कर सन्धिपत्र लिख दिया। हाथी के दाँतों से बना एक मुकुट, पाँच सौ मणिपुरी घोड़े और तीन बड़े हाथी उपहार में दिये।

इस प्रकार तरह-तरह की व्यवस्थाएँ करते-करते प्रभात हो गया—दिन चढ़ आया। रात्रि में घटित घटना, पिशाच-लीला के समान प्रतीत हुई। दिन के समय आराकान के सैनिकों ने इसे स्पष्टतया अपना अपमान समझा, पर विवश हो रहे।

राजधर ने आराकान-पति से कहा—"अब विलम्ब की आवश्यकता नहीं है, शीघ्र ही युद्ध स्थगित करने का एक आदेश-पत्र अपने सेनापति के निकट आप भेज दीजिये। उस पार इतनी देर में घोर युद्ध छिड़ चुका होगा।"

कुछ सैनिकों के साथ दूत के द्वारा आदेश पत्र भेज दिया गया।

८

अत्यन्त भोर वेला में ही, अन्धकार के दूर होते न होते ही, युवराज और इन्द्रकुमार दो भागों में बँटकर पश्चिम और पूर्व की ओर आक्रमण करने को चल पड़े। अल्पसंख्यक सेना की दुहाई देकर रूपनारायण हजारी दुःख प्रकट कर रहे थे। वे कह रहे थे—"और भी पाँच हजार लेकर आने से कोई चिन्ता की बात न रहती।"

इन्द्रकुमार ने कहा—"यदि त्रिपुरारी की कृपा हमारे ऊपर होगी, तो इतनी ही सेना से हम युद्ध जीत जायँगे।"

यह कह कर वे हर-हर महादेव के जयघोष के साथ, कृपाण हाथ में ले, घोड़े पर सवार हो, विपक्षियों की ओर दौड़ पड़े—उनके दीप्त उत्साह ने सैनिकों को अछूता न छोड़ा, ग्रीष्म ऋतु में दक्खिनी हवा से फूस की छाजन के ऊपर से जिस तरह आग की

लपटें दौड़ पड़ती हैं, उनके सैनिकगण भी उसी तरह दौड़ पड़े। कोई भी उनका गतिरोध न कर सका। विपक्षियों के दक्षिण भाग का व्यूह छिन्न-भिन्न हो गया। हाथो-हाथ युद्ध होने लगा। मनुष्यों के मस्तक और शरीर, कटी हुई फसलों की तरह शष्य-क्षेत्र में गिरने लगे। इन्द्रकुमार का घोड़ा कटकर गिर पड़ा। वे भूमि पर गिर पड़े। अफवाह फैल गयी कि वे मारे गये। कुठाराघात से एक मग-अश्वारोही को अश्वच्युत करके इन्दकुमार उसी क्षण उसकी गरदन के ऊपर जा बैठे। रकाब के ऊपर खड़े हो अपनी रक्ताक्त तलवार को आकाश में उठा वे वज्र स्वर से चीत्कार कर उठे—"हर-हर महादेव।" युद्ध की आग दुगुनी जल उठी। यह सब व्यापार देख मग लोगों के बायें भाग के व्यूह के सैनिकगण आक्रमण की प्रतीक्षा न कर सहसा बाहर निकल कर युवराज की सेना के ऊपर टूट पड़े।

युवराज के सैनिकों ने सहसा ऐसे आक्रमण की आशा नहीं की थी। वे क्षणमात्र में विशृंखलित हो गये। उनके ही अश्व अपने ही पदातियों के ऊपर दौड़ चले। किस तरफ जायँ, इसका कोई ठिकाना ही नहीं रहा। युवराज और ईसा खाँ असीम साहस के साथ सैनिकों को संयत कर लेने की चेष्टा जी जान से करने लगे, किन्तु किसी तरह भी सफल न हो सके। यह कल्पना करके कि निकट ही कहीं राजधर की सेना छिपी हुई है, संकेत स्वरूप बारम्बार तुरही ध्वनि करने लगे, किन्तु राजधर के सैनिकों के आने का कोई भी लक्षण प्रकट न हुआ।

ईसा खाँ ने कहा—"उसको बुलाना निरर्थक है। वह गीदड़ दिन के समय अपनी बिल से बाहर न निकलेगा।"

ईसा खाँ घोड़े से जमीन पर कूद पड़े, उन्होंने पश्चिम तरफ

मुँह कर शीघ्रता से नमाज पढ़ डाली। मरने के लिए तैयार हो, प्राण की ममता छोड़ युद्ध करने लगे। चारो तरफ मृत्यु उनको जितना ही घेरने लगी, दुर्दान्त यौवन, मानो उतनी ही तेज गति से उनके शरीर में वापस आने लगा।

ऐसे ही समय में इन्द्रकुमार शत्रुओं के एक अंश को सम्पूर्ण जीतकर वापस आ गये। आने पर उन्होंने देखा कि, युवराज के सैनिकों का एक अश्वारोही-दल छिन्न-भिन्न होकर भागता जा रहा है। उन्होंने उन सबोंको ललकारा—समझाया और वापस लौटा लाये। विद्युद्वेग से युवराज की सहायता के लिए वे आ धमके, किन्तु उस विशृङ्खलता के बीच उनको कुछ भी कूल-किनारा नहीं दिखाई पड़ा। बवंडर में पड़कर मरुभूमि की बालुका-राशि जिस तरह चक्कर काटती रहती है, उपत्यका के मध्यस्थल में युद्ध उसी तरह चक्कर काटने लगा। राजधर की सहायता के लिये, बार-बार तुरही-वादन व्यर्थ सिद्ध हुआ।

सहसा पता नहीं, किस मंत्र बल से सब कुछ ही स्थगित हो गया। जो जहाँ था, वह उसी जगह खड़ा हो रहा। आहतों के आर्त्तनाद और अश्वों के हिनहिनाहट के अतिरिक्त और किसी तरह का शब्द नहीं हो रहा था। सन्धि की पताका लिये आदमी आ गया था। उसने मगों के राजा के पराजय स्वीकार कर लेने की घोषणा की। हर-हर महादेव के नारों से आकाश विदीर्ण हो गया। परन्तु मग सैनिक आश्चर्य में पड़ एक दूसरे के मुँह की ओर ताकने लगे।

६

जिस समय राजधर विजयोपहार लेकर लौटे, उस समय उनके चेहरे पर इतनी हँसी की झलक प्रकट हो रही थी कि, उनकी दोनों ही छोटी-छोटी आँखें विन्दुवत् चमकने-दमकने लगीं। हाथी के दाँतों का मुकुट बाहर निकाल, इन्द्रकुमार को दिखाते हुए उन्होंने कहा—"यह देखो, युद्ध की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर मैंने यह पुरस्कार प्राप्त किया है।"

इन्द्रकुमार ने क्रुद्ध होकर कहा—"युद्ध! तुमने युद्ध कहाँ किया। यह पुरस्कार तुम्हारा नहीं है। इस मुकुट को युवराज पहनेंगे।"

राजधर ने कहा—"मैं युद्ध में विजय प्राप्त कर इसे ले आया हूँ। इस मुकुट को मैं ही पहनूँगा।"

युवराज ने कहा—"राजधर ठीक बात कह रहे हैं, इस मुकुट के वही अधिकारी हैं।"

ईसा खाँ ने बिगड़कर राजधर से कहा—"तुम मुकुट पहन कर स्वदेश नहीं लौट सकते। तुमने सेनापति के आदेश का उल्लंघन किया है, युद्ध से मुँह मोड़ भाग गये थे, इस कलंक को यह मुकुट क्या ढँक सकेगा? तुम एक फूटी हुई हाँडी गले में लटका कर देश चले जाओ, तुमको वह अच्छी शोभा देगी।"

राजधर बोले—"खाँ साहब, इस समय तुम्हारे मुँह से अवश्य बे-बात की बात निकलेगी किन्तु यह न भूलो कि मैं तो न होता, तो तुम लोगों का कहीं पता न लगता।"

इन्द्रकुमार ने कहा—"हम जहाँ भी क्यों न रहते, युद्ध छोड़कर बिल के अन्दर छिपे न रहते।"

युवराज ने कहा—"इन्द्रकुमार, यह तो तुम अनुचित बात कह रहे हो। सच बोलने में संकोच ही क्यों? आज यदि राजधर न रहते, तो हमारी विपद का कोई अन्त ही न रहता।"

इन्द्रकुमार ने कहा—"राजधर न होते तो भी मैं युद्ध करके मुकुट ले आता—राजधर तो चोरी करके ले आया है। भैया, मुकुट लाकर मैं तुमको पहना देता, मैं स्वयं न पहनता।"

मुकुट अपने हाथ में लेकर युवराज ने राजधर से कहा—"भाई, तुमने ही आज विजय प्राप्त की है। तुम यदि न रहते तो यह अल्पसंख्यक सेना लेकर हम कितने विपद में पड़ गये होते, नहीं कहा जा सकता। यह मुकुट मैं तुमको पहना रहा हूँ।" यह कहकर उन्होंने राजधर के सिर पर मुकुट पहना दिया।

इन्द्रकुमार का वक्षःस्थल मानों फटने लगा। उन्होंने रुँधे हुए स्वर से कहा—"भैया, राजधर शृगाल की तरह, गुप्त रूप से रात्रि काल में यह राजमुकुट हथिया लाया है। और मैं जो अपने प्राणों की बाजी लगाकर युद्ध करता रहा—तो मेरे लिए तुम्हारे मुख से एक भी प्रशंसा का वचन न सुनाई पड़ा। तुमने शायद यही बात अभी कही है कि राजधर के न रहने से कोई भी तुमको आसन्न विपद से बचा न सकता। क्यों भैया, मैंने क्या प्रातःकाल से लेकर सन्ध्याकाल तक तुम्हारी आँखों के सामने युद्ध नहीं किया—मैं क्या युद्ध छोड़कर भाग गया था—मैंने क्या कभी भीरुता

दिखायी है ? मैं क्या शत्रु सैन्य को छिन्न-भिन्न कर तुम्हारी सहायता के लिए नहीं आया था ? क्या देखकर तुमने कहा कि राजधर के बिना कोई तुमको इस विपद से बचा नहीं सकता था ?"

युवराज ने क्षुब्ध होकर कहा—"भाई, मैं अपनी ही विपद के बारे में कुछ नहीं कह रहा हूँ—"

बात अभी पूरी भी न हो सकी थी कि इन्द्रकुमार अभिमान से व्यथित हो उस कमरे से बाहर चले गये।

ईसा खाँ ने युवराज से कहा—"युवराज, यह मुकुट किसी को भी देने का अधिकार तुमको नहीं है। मैं सेनापति हूँ। मैं जिसको यह मुकुट दूँगा, वही उसका अधिकारी होगा।"

यह कह, ईसा खाँ राजधर के मस्तक से मुकुट लेकर युवराज के सिर पर रखने लगे।

युवराज पीछे हट गये, और बोले—"नहीं, मैं इसे ग्रहण नहीं कर सकता।"

ईसा खाँ ने कहा—"तो रहने दो। कोई भी यह मुकुट नहीं पा सकेगा।" यह कह, उन्होंने पदाघात से मुकुट को कर्णफूली नदी के जल में फेंक दिया। इसके बाद उन्होंने कहा—"राजधर ने युद्ध के नियमों का उल्लङ्घन किया है—राजधर को इसके लिए सजा मिलनी ही चाहिये।"

इन्द्रकुमार अपनी समस्त सेना लेकर, आहत हृदय से शिविर से दूर चले गये। युद्ध का अवसान हो चुका है। सेना शिविर उठाकर अपने देश को लौट जाने की तैयारी कर रही है। ऐसे ही समय में सहसा एक बाधा आ पहुँची।

ईसा खाँ ने जब मुकुट छीन लिया तब राजधर ने मन ही मन कहा—"मेरे न रहने से तुम लोगों का उद्धार कैसे होता है, यही मैं देखूँगा।"

उसके दूसरे दिन राजधर ने गुप्त रूप से अराकानपति के शिविर में एक पत्र भेज दिया। उस पत्र में उन्होंने त्रिपुरा की सेना में आपसी फूट का समाचार देकर, अराकानपति को युद्ध के लिये आह्वान किया था।

इन्द्रकुमार जिस समय सेना के साथ स्वदेश की तरफ बहुत दूर अग्रसर हो चुके थे, और युवराज के सैनिकगण शिविर उठाकर यात्रा करने ही वाले थे, कि उसी समय हठात् मगों ने पीछे से आक्रमण कर दिया। राजधर अपनी सेना लेकर कहाँ खिसक गये, इसका कोई पता ही नहीं चला।

युवराज की हतावशिष्ट तीन सहस्र सेना, चारगुनी मगसेना द्वारा घेर ली गयी। ईसा खाँ ने युवराज से कहा—"आज अब हमारा परित्राण नहीं हो सकता। युद्ध का भार मुझपर सौंप कर तुम भाग जाओ।"

युवराज ने दृढ़ स्वर से कहा—"पलायन करने से भी तो किसी दिन मर जाना ही पड़ेगा।" चारो तरफ नजर डालकर बोले—"पलायन भी कहाँ करूँ। यहाँ मर जाने की जैसी सुविधा है, पलायन करने में वैसी सुविधा नहीं है। हे ईश्वर, सब कुछ ही तुम्हारी इच्छा है।"

ईसा खाँ ने कहा—"तो आओ, आज समारोह के साथ हमलोग मौत का सामना करें।" यह कहकर प्राचीरवत् शत्रु सेना के एक दुर्बल अंश को लक्ष्य कर, अपनी समस्त सेना को विद्युद्वेग से दौड़ा दिया। पलायन-पथ रुद्ध देखकर सैनिकगण उन्मत्त की तरह लड़ने लगे। ईसा खाँ ने अपने दोनों हाथों में दो तलवारें ले लीं—उनके चारो तरफ एक भी आदमी न ठहर सका। युद्धक्षेत्र के एक स्थान पर एक छोटा-सा फव्वारा उठ रहा था, उसका जल रक्त से लाल हो चला।

ईसा खाँ शत्रु के व्यूह को भेदकर लड़ते-लड़ते प्रायः पर्वत के शिखर तक चढ़ चुके थे, कि उसी समय एक तीर आकर उनके वक्षःस्थल पर बिंध गया। वे अल्लाह का नाम उच्चारण कर घोड़े के ऊपर से नीचे गिर पड़े।

युवराज के घुटने और सीने पर एक-एक तीर घुस चुके थे। उनका वाहन हाथी भी बिंध गया और महावत आहत होकर नीचे गिर पड़ा। हाथी युद्ध क्षेत्र को छोड़कर उन्मादग्रस्त की तरह दौड़ने लगा। युवराज ने उसको वश में करने की बड़ी चेष्टा की पर व्यर्थ। अन्त में वे यन्त्रणा और रक्तपात से दुर्बल हो, युद्ध क्षेत्र से बहुत दूर, कर्णफूली नदी के तट पर हाथी के हौदे पर से मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

११

आज रात्रि में चन्द्रोदय हुआ है। गत दिनों की रात्रिकाल में, जहाँ हरे मैदान के ऊपर चन्द्रमा की ज्योति, विचित्र वर्णों के छोटे-छोटे जङ्गली फूलों के ऊपर आ पड़ती थी, आज वहाँ सहस्रों की संख्या में मनुष्यों के हाथ, पैर, कटे हुए मुण्डों और मृत शरीरों के ऊपर आ पड़ी है। जिस स्फटिकवत् स्वच्छ फव्वारे के जल में समस्त रात्रि तक चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब नृत्य करता रहता था, वही फव्वारा मृत अश्वों के शरीरों से प्रायः रुँध गया है—उसका जल रक्त से लाल हो गया है। किन्तु दिन के समय, मध्याह्न की धूप में जहाँ मृत्यु का भीषण उत्सव हो रहा था, भय-क्रोध-नैराश्य-हिंसा सहस्र हृदयों से फेनिल होती जा रही थी—अस्त्रों की झन-झनाहट, पागलों की चिल्लाहट, आहतों का आर्त्तनाद, अश्वों की हिनहिनाहट और रणशङ्खों की ध्वनि से नील वर्ण आकाश मानो मथित होता जा रहा था—वहाँ रात्रि में चन्द्रमा के प्रकाश से कैसी अगाध शान्ति, कैसा सुगम्भीर विषाद उपस्थित हो गया है। मृत्यु का नृत्य मानो समाप्त हो चुका है, केवल प्रकाण्ड नाट्यशाला के चारो तरफ उत्सव का भग्नावशेष पड़ा हुआ है। कोई शब्द या किसी तरह की आहट नहीं है, प्राण नहीं है, चेतना नहीं है, हृदय की तरङ्ग स्तब्ध हो चुकी है। एक तरफ है पर्वत की सुदीर्घ छाया, दूसरी तरफ है चन्द्रमा की ज्योत्सना। जहाँ-तहाँ पाँच छः के

यूथों में बड़े-बड़े वृक्ष, झंखाड़दार मस्तक लिये शाखा-प्रशाखाओं और जटाजूट को अन्धकाराच्छन्न बना, स्तब्ध भाव से खड़े हैं।

इन्द्रकुमार युद्ध का पूरा समाचार पाकर जब युवराज को ढूँढ़ने के लिए आ रहे थे, उस समय युवराज कर्णफूली नदी के किनारे घासों की शय्या के ऊपर लेटे हुए थे। रह-रहकर अँजुरी से जल पी रहे थे, कभी-कभी नितान्त अवसन्न होकर आँखें बन्द हो जाती थीं। दूरस्थ समुद्र की तरफ से हवा आ रही था, कानों के समीप कल्कल् नाद से नदी का जल बहता जा रहा था। कहीं भी जन-प्राणी का नाम-निशान नहीं था। चारो तरफ निर्जन पर्वत खड़े थे। जनहीन अरण्य भाँ-भाँ कर रहा था—आकाश में चन्द्रमा अकेला था, ज्योत्सनालोक से अनन्त नीलाकाश पाण्डुवर्ण धारण कर चुका था।

ऐसे ही समय में जब विदीर्ण हृदय से इन्द्रकुमार "भैया" कहकर पुकार उठे, तब समस्त आकाश-पाताल मानो सिहर उठा। चन्द्रनारायण चौंककर जाग उठे। "आओ भाई" कहकर आलिङ्गन-के लिए अपने दोनों हाथों को बढ़ा दिया। इन्द्रकुमार भैया के आलिङ्गन में आबद्ध होकर शिशु की तरह रो उठे।

चन्द्नारायण ने धीरे-धीरे कहा—"ओः, मैं बच गया भाई। तुम आओगे यह जानकर ही इतनी देर तक मेरा प्राण नहीं निकल रहा था। इन्द्रकुमार, तुमने मुझपर अभिमान किया था, तुम्हारे उस अभिमान को लेकर क्या मैं मर सकता हूँ। आज फिर मुलाकात हो गयी, तुम्हारा प्रेम फिर मुझे वापस मिल गया—अब मर जाने में कोई कष्ट मुझे नहीं रहा।" यह कहकर दोनों हाथों से शरीर में बिद्ध तीर को निकाल डाला। रक्त छूट चला, शरीर हिमवत् हो चला, मृदु स्वर से उन्होंने कहा—"मैं मर

रहा हूँ, इसके लिए मुझे कोई दुःख नहीं है, किन्तु हम लोगों की भैया, पराजय हो गयी।"

इन्द्रकुमार ने रुद्ध वाणी में कहा—"पराजय तुम्हारी नहीं हुई है, पराजय मेरी ही हुई है।"

चन्द्रनारायण ने ईश्वर को स्मरण कर हाथ जोड़कर कहा—"दयामय, भवलीला समाप्त करके मैं आ गया, अब अपनी गोद में मुझे स्थान दो।" यह कह उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

भोर बेला में नदी के पश्चिमी करारे पर जब चन्द्र पाण्डुवर्ण हो चला, तब चन्द्रनारायण के मुँदे हुए नेत्रों वाली मुखाकृति ने भी पाण्डुवर्ण धारण कर लिया। चन्द्रमा के साथ ही साथ उनका जीवन अस्त हो गया।

परिशिष्ट

विजयी मग सेना ने समस्त चटगाँव को त्रिपुरा के अधिकार से छीन लिया। त्रिपुरा की राजधानी उदयपुर तक उन्होंने लूटपाट की। अमर माणिक्य भागकर देवघाट चले गये। अपमान से व्यथित हो वहाँ ही उन्होंने आत्महत्या कर ली। इन्द्रकुमार ने मग लोगों के साथ युद्ध करके ही प्राण त्याग किया। जीवन और कलंक को लेकर अपने देश को लौट जाने की उनकी इच्छा नहीं थी।

राजधर ने राजा होने के बाद, अभी केवल तीन वर्ष ही राज्य-भोग किया था कि गोमती के जल में डूब जाने से उनकी मृत्यु हो गयी।

इन्द्रकुमार जिस समय युद्ध में गये उस समय उनकी स्त्री गर्भवती थीं। उनके पुत्र कल्याण माणिक्य राजधर की मृत्यु के बाद राजा हुए। वे अपने पिता की ही तरह वीर थे। जिस समय सम्राट शाहजहाँ की सेना ने त्रिपुरा पर आक्रमण किया, उस समय कल्याण माणिक्य ने उसे परास्त किया था।

अचलगढ़ के राजा

मारवाड़ के राजपूत राजा यशवन्त सिंह दिल्ली के बादशाह औरङ्गजेब के एक सेनापति थे। उनके अधीन नहर खाँ नामक एक हिन्दू राजपूत वीर काम करते थे। यह ठीक है कि नहर खाँ नाम से उनको सब लोग पुकारते थे, किन्तु उनका असल नाम था मुकुन्द दास। एक समय की बात है कि उन्होंने बादशाह की कोई बात नहीं मानी, जिससे बादशाह उनपर नाराज हो गये। बादशाह ने हुकुम दिया, "बिना किसी प्रकार का अस्त्र लिये मुकुन्द को एक बाघ के पिंजड़े में छोड़ दिया जाय। उस बाघ से युद्ध करना होगा।"

मुकुन्द ने कहा—"अच्छा, ऐसा ही होगा।" निर्भयता से पिंजड़े में प्रवेश कर उन्होंने बाघ को पुकारकर कहा—"अरे, तुम तो मियाँ शाह के बाघ हो, एक बार यशवन्त के बाघ के पास तो आओ, तुमको जरा देखूँ।" यह कह, आँखें लाल कर उन्होंने बाघ की तरफ ताका। अकस्मात् पता नहीं, किस कारण से बाघ को इतना भय मालूम हुआ कि, वह अपना मुँह फेर कर पूँछ को समेट, सुड़-सुड़ करता हुआ एक कोने में जाकर खड़ा हो गया।

राजपूत वीर ने कहा—"जो शत्रु भय से भाग जाता है, उसको तो हम मार नहीं सकते। ऐसा करना तो हमारे धर्म के विरुद्ध बात है।" यह आश्चर्यजनक घटना देखकर बादशाह ने उनको पुरस्कार देकर छोड़ दिया।

बाघ स्वभावतः अत्यन्त भयानक जानवर है, यह बात सच है किन्तु किसी-किसी समय वे अकस्मात् अत्यन्त सामान्य कारणों से ही डर जाते हैं। एक कहानी शायद तुमलोगों ने सुनी होगी। कुछ अंग्रेज दल बाँधकर सुन्दर वन में शिकार करने गये थे। जब भोजन करने का समय हो गया, तब वन में आसन बिछा कर सभी भोजन करने बैठ गये। ऐसे ही समय में जङ्गल के भीतर से एक बाघ कूदकर उनलोगों के पास आ गया। बाघ को देखकर एक मेम साहब ने झटपट एक छाता खोलकर उसके मुख के सामने रख दिया। अकस्मात् छाता खोल देने से, बाघ इतना अधिक डर गया कि, उस जगह बहुत देर तक वह टिक न सका, झटपट जंगल में घुस गया।

ऐसी बात सुनी जाती है कि बाघ की आँख से आँख मिलाये रहने से, वह आक्रमण करने का साहस नहीं करता। यह लोगों के मुँह से सुनी हुई बात है। यह बात सच है या झूठ, मैं बता नहीं सकता। खुद ही इसकी जाँच करके बता सकूँ, ऐसी सुविधा या साध भी मुझे नहीं है। जाँच करने के लिये जाकर, फिर वापस लौटकर बताने की सम्भावना क्या हो सकती है?

नहर खाँ की एक और कहानी सुनाता हूँ। राजपूतों में एक प्रकार का खेल प्रचलित है। घोड़े पर चढ़कर एक वृक्ष के नीचे से घोड़े को दौड़ा देना पड़ता है। जिस समय घोड़ा दौड़ता रहता है उसी समय वृक्ष की डाल पकड़ कर झूल जाना पड़ता है, घोड़ा पैरों के नीचे से चला जाता है।

बादशाह के एक लड़के ने एक बार नहर खाँ को यही खेल करने का हुकुम दिया। नहर क्रोध में आकर बोले—"मैं तो कोई

बन्दर नहीं हूँ। राजा यदि खेल देखना चाहते हैं तो लड़ने का हुकुम दे दें, एक बार मैं तलवार का खेल उनको दिखा दूँ।"

बादशाह के लड़के ने कहा—"अच्छा, तुम अपने साथ सैन्य लेकर सिरोही के राजा सुरतान को पकड़ लाओ।"

नहर इसपर राजी हो गये। सिरोही के राजा अचलगढ़ नामक अपने एक पर्वतीय दुर्ग के अन्दर छिप रहे। नहर चुने-चुने लोगों का एक दल ले, अंधेरी रात में गुप्त रूप से दुर्ग में घुस गये और राजा को पकड़कर अपनी पगड़ी से बाँध लिया।

इस प्रकार राजा को बन्दी बना, नहर उनको दिल्ली में अपने प्रभु यशवन्त सिंह के पास ले गये। यशवन्त ने सुरतान को बादशाह की सभा में ले जाने का निश्चय किया। इसके साथ ही बादशाह से उन्होंने वचन ले लिया कि, सभा में कोई उनका किसी भी प्रकार का अपमान न कर सकेगा।

सिरोही के राजा को औरङ्गजेब की सभा में ले जाया गया। शाही सभा में यह प्रथा प्रचलित है कि, बादशाह की सभा में जाने पर सब को ही झुककर बादशाह को सलाम करना पड़ता है। उसी प्रथा के अनुसार सबने ही सुरतान को सलाम करने को कहा।

उन्होंने दर्प के साथ अपना सिर ऊपर उठाकर कहा—"मेरा प्राण बादशाह के हाथ में है। किन्तु मेरा मान मेरे अपने ही हाथ में है। कभी किसी भी मनुष्य के सामने मैंने मस्तक नहीं झुकाया है और न कभी झुकाऊँगा।"

सुनकर सभा के लोग आश्चर्य में पड़ गये, किन्तु यशवन्त की प्रतिज्ञा का स्मरण कर किसी ने उनको कुछ भी नहीं कहा। उन लोगों ने एक कौशल रचा। एक छोटा-सा दरवाजा था। उसके भीतर से कोई घुसना चाहे तो सिर बिना झुकाये घुस नहीं सकता

था। उन लोगों ने उसी दरवाजे के भीतर से उनको बादशाह के सामने जाने को कहा। सिर झुक न जाय, इससे बचने के लिए उन्होंने अपने पैरों को आगे बढ़ाकर सिर को बाहर ही निकाल रखा। राजा की इस निर्भीकता से बादशाह क्रोधित नहीं हुए, सन्तुष्ट होकर ही बोले—"तुम कौन राज्य पुरस्कार में लेना चाहते हो, मैं तुमको दूँगा।" राजा ने तुरन्त ही कहा—"मेरे अचलगढ़ की बराबरी का राज्य और कहाँ है। मुझे उसी जगह वापस चला जाने दीजिये।"

बादशाह ने सन्तुष्ट होकर उनको जाने की अनुमति दे दी। यह राजा और यह राजवेश चिर दिन अपनी स्वाधीनता की रक्षा करते आये हैं। कभी मुगल सम्राट का दास ये लोग नहीं बने। जो बन्दी अवस्था में भी अपने मान की रक्षा करके चल सकते हैं, उनका कौन दमन कर सकता है?

न्याय-धर्म

प्रूशिया के 'महान' उपाधि प्राप्त सम्राट् फ्रेडरिक ने राजधानी से कुछ दूर एक बगीचा और प्रमोदगृह बनाने का संकल्प किया। जब सभी तैयारियाँ पूरी हो गयीं, तब उनको यह बात सुनाई पड़ी कि एक किसान का फसल को चूर्ण करने वाला यन्त्र-गृह, उस भूमि के बीच पड़ गया है, जिसके कारण उनके बगीचे का काम पूरा नहीं होने पा रहा है। बहुत रुपये का प्रलोभन देने पर भी किसान अपना मकान वहाँ से हटाने को राजी नहीं हुआ। यह सुनकर सम्राट ने कृषक को बुलवाया और उससे पूछा—"इतना रुपया मिलने पर भी तुम मकान क्यों नहीं छोड़ते ?"

कृषक ने उत्तर दिया—"यह मेरा पैतृक गृह है। इसी घर में मेरे पिता ने अपना जीवन निर्वाह किया था और यहीं उनकी मृत्यु हुई थी। इसी में मेरा—मेरे पुत्र का जन्म हुआ है, मैं इसको कैसे हटा या बेच सकता हूँ।"

सम्राट ने कहा—"पर मैं इसी स्थान पर अपना प्रासाद बनवाना चाहता हूँ।"

कृषक ने कहा—"महाराज शायद भूल रहे हैं कि वही अन्न पीसने के यन्त्र वाला गृह मेरा प्रासाद है।"

सम्राट् ने कहा—"तुम यदि इसे न बेचोगे तो मैं इस गृह को तुमसे छीन ले सकता हूँ।"

कृषक ने कहा—"नहीं, आप ऐसा नहीं कर सकते, बर्लिन नगर में विचारक विद्यमान है।"

यह बात सुनकर सम्राट ने कृषक के मकान पर फिर हस्तक्षेप नहीं किया। उन्होंने सोचा—राजा लोग कानून बना सकते हैं, किन्तु कानून को तोड़ नहीं सकते। कृषक का वह अन्न पीसने का यन्त्र आज तक सम्राट के उद्यान में विद्यमान है।

गुजरात की रानी के सम्बन्ध में ऐसी ही एक और कहानी सुनी जाती है। बहुत दिन पहले की बात है। तब गुजरात सम्पूर्ण स्वाधीन था। रानी का नाम था मीनल देवी। अपने राजत्व काल में घोलका गाँव में वे "मीनल तालाब" नामक एक पोखरा खुदवा रही थीं। उस पोखरे की पूर्व दिशा में एक दुष्ट स्वभाव की महिला का मकान था। रानी ने बहुत रुपये देकर उस मकान को खरीद लेने की चेष्टा की थी। किन्तु मकान-मालकिन ने सोचा—पोखरा खुदवा कर रानी जिस तरह कीर्त्तिलाभ करेंगी, उसी तरह पोखरा खुदवाने में बाधा डाल कर, मेरा भी नाम अमर हो जायगा। यह विचार कर उसने अपना मकान बेचने में असहमति प्रगट की। रानी ने जरा भी बलप्रयोग नहीं किया। मकान वहाँ ही रह गया। आज तक भी मीनल-तालाब के पूरब की सीमा असमान ही है। उसी समय से उक्त प्रदेश में एक प्रवाद प्रचलित हो गया है कि न्याय-धर्म देखना चाहते हो तो मीनल-तालाब जाओ।"

काम का आदमी कौन है ?

आज से प्रायः चार सौ वर्ष पहले की बात है। पंजाब प्रान्त के तलबन्दी गाँव में कालू नामक एक क्षत्रिय व्यवसाय-वाणिज्य करके अपना गुजारा करते थे। उनको एक पुत्र नानक नाम के थे। नानक किन्तु निरे बच्चे ही नहीं थे। उनकी अवस्था हो गयी थी। अब उनको अपने पिता के रोजगार-धन्धे में सहायता करने की जरूरत थी, किन्तु वे ऐसा नहीं कर रहे थे—वे अपनी ही धुन में किसी चिन्ता में डूबे रहकर समय बिता रहे थे, वे धर्म-विषय की चर्चा में ही लगे रहते थे।

किन्तु पिता का मन था रुपये की तरफ, लड़के का मन था धर्म की ओर। इसलिये पिता के मन में विश्वास हो गया कि इस लड़के से दुनियाँ का कोई भी काम न होगा। लड़के की दुर्दशा के बारे में सोचते रहने से रात के समय कालू को नींद नहीं लगती थी। नानक को भी रात में अच्छी नींद आती रही हो, ऐसी कोई बात नहीं थी। उनके मन में भी दिन रात एक न एक चिन्ता बनी ही रहती थी।

पिता यद्यपि यही कहा करते थे कि इस लड़के से कुछ भी न होगा, किन्तु गाँव-मुहल्ले के लोग ऐसी बात नहीं कहते थे। इसका एक कारण शायद यही रहा होगा कि नानक का मन कार्य-विशेष में लगे रहने से मुहल्ले के लोगों को रोजगार-धन्धे में विशेष

क्षति नहीं होती थी। किन्तु जान पड़ता है, वे लोग नानक का चेहरा, नानक का भाव देखकर आश्चर्य में पड़ गये थे। यहाँ तक कि नानक के नाम से एक कहानी प्रचलित हो गयी। यह कहानी सच्ची नहीं है, यह बात किसी को बता देने की जरूरत नहीं है। फिर भी लोग जैसी बात कहा करते हैं, वही मैं लिख रहा हूँ।

एक दिन नानक गाय चराने गये हुए थे। नींद आने पर एक पेड़ के नीचे वे सो गये थे। सूर्य के अस्त होने के समय नानक के चेहरे पर धूप पड़ रही थी। यह बात सुनी जाती है कि, एक काला साँप नानक के मुख के ऊपर अपना फण रखकर धूप से बचाव कर रहा था। उस देश के राजा उसी समय रास्ते से जा रहे थे—सुनते हैं कि उन्होंने अपनी आँखों से प्रत्यक्ष यह घटना देखी थी। किन्तु हमने राजा के मुख से यह बात नहीं सुनी है, नानक ने भी किसी दिन यह कहानी हमें नहीं सुनायी—सुनाते तो सुनकर भी हमें बड़ा विश्वास नहीं होता।

बहुत कुछ सोच-विचार करके कालू ने स्थिर कर लिया कि, यदि नानक अपने ही हाथ से व्यवसाय करने लगें, तो उस हालत में वे काम के आदमी बन सकते हैं। यह विचार कर उन्होंने नानक के हाथ में कुछ रुपये दिये। उनको कह दिया—"एक गाँव से नमक खरीद कर दूसरे गाँव में बेच आओ।"

नानक रुपये लेकर अपने बालसिन्धु नामक नौकर को साथ लिये नमक खरीदने चले गये। अकस्मात् रास्ते के बीच कुछ फकीरों के साथ नानक की मुलाकात हो गयी। नानक के मन में बड़ा ही आनन्द हुआ। उन्होंने सोचा, इन फकीरों के द्वारा मैं धर्म के विषय में जानकारी हासिल करूँगा। किन्तु उनके पास जाकर जब वे उनसे पूछने लगे, तो वे कोई भी उत्तर न दे सके। तीन दिनों से

उनको खाने को नहीं मिला था। ऐसे दुर्बल हो गये थे कि, उनके मुख से कोई बात नहीं निकलती थी। नानक के मन में बड़ी दया उत्पन्न हो गयी। उन्होंने कातर होकर अपने नौकर से कहा—"मेरे पिता जी ने कुछ लाभ के लिए, मुझे नमक का व्यवसाय करने की आज्ञा दी थी। किन्तु लाभ का यह रुपया भला कितने दिनों तक ठहर सकेगा। कुछ ही दिनों में यह खतम हो जायगा। मेरी बड़ी इच्छा हो रही है कि, इन रुपयों से गरीबों का दुःख दूर करके जो लाभ चिर दिन रहेगा, उसी पुण्य को प्राप्त कर लूँ।"

नानक की बात सुनकर बालसिन्धु का भी मन पिघल गया। उसने कहा—"यह तो बड़ी अच्छी बात है।"

नानक ने अपने व्यवसाय के सभी रुपये फकीरों को दे दिये। वे भरपेट खा लेने के बाद, जब शरीर में बल पा गये, तब नानक को बुला कर ईश्वर के बारे में बहुत-सी बातें सुनाने लगे। उन लोगों ने नानक को समझा दिया—"ईश्वर केवल एक है, और सब कुछ ही उनकी सृष्टि है। यह बात सुनकर नानक के मन में बड़ा आनन्द हुआ।

उसके दूसरे दिन नानक अपने घर लौट आये। कालू ने पूछा—"लाभ में कितना पैदा किया?" नानक ने कहा—"पिताजी, मैंने गरीबों को खिलाया है। आपको ऐसा धन मिल गया है जो चिर दिन रहेगा।" किन्तु उस प्रकार के लाभ के प्रति कालू को बहुत लोभ नहीं था। इसलिए वे कुपित होकर लड़के को मारने लगे। ऐसे ही समय में उस प्रदेश के छोटे राजा रास्ते से जा रहे थे। उनका नाम था राय बोलर। नानक को मारते देखकर वे घर में घुस पड़े। उन्होंने पूछा—"क्या हुआ है। इतनी गड़बड़ी क्यों मची है।" जब पूरा हाल उन्होंने सुन लिया तब उन्होंने कालू को

खूब फटकारा। कहा—"फिर कभी यदि तुम नानक के शरीर पर हाथ उठाओगे तो अच्छा न होगा।" यहाँ तक कि राजा ने अत्यन्त भक्ति के साथ नानक को प्रणाम किया। लोग कहते हैं कि जिस समय साँप ने नानक के माथे पर छाया रख दिया था, तब राजा ने उसे देखा था, इसीलिए नानक के प्रति उनके मन में भक्ति हो गयी थी। किन्तु साँप का छाता लगाना बिलकुल ही अफवाह है—असल बात यह है कि नानक का समस्त वृत्तान्त सुनकर, राजा समझ गये थे कि, नानक एक महान् पुरुष हैं। नानक के ऊपर फिर तो मार-पीट नहीं चल सकती थी! कालू अन्य उपाय देखने लगे।

जयराम नानक के बहनोई थे। पठान दौलत खाँ के शस्य का गोला जयराम के जिम्मे था। कालू ने निश्चय किया कि नानक को भी जयराम के काम में लगा देंगे—ऐसा होने से धीरे-धीरे नानक काम के आदमी बन जायँगे। नानक के पिता ने जब नानक के सामने यह प्रस्ताव रक्खा, तब उन्होंने कहा—"अच्छा।"

नानक जयराम के पास सुलतानपुर जा पहुँचे। वहाँ कुछ दिनों तक अच्छी तरह काम करते रहे। सभी के ऊपर उनका प्रेम भाव था। इसीलिए सुलतानपुर के सभी लोग उनको प्यार करने लगे। किन्तु काम में मन लगाकर नानक अपने असल काम को भूल नहीं गये थे। वे ईश्वर की बातें सदा ही सोचते रहते थे।

इसी तरह कुछ समय बीत गया। एक दिन सबेरे नानक अकेले बैठे हुए ईश्वर का ध्यान कर रहे थे, ऐसे ही समय में एक मुसलमान फकीर ने आकर उनसे कहा—"नानक, तुम आज कल किस काम को लेकर व्यस्त हो, बताओ तो भला। यह काम-काज तुम

छोड़ दो। चिर दिन का जो यथार्थ धन है, उसको ही उपार्जन करने की चेष्टा करो।"

फकीर ने जो कुछ कहा, उसका अर्थ यही था कि संसार का कल्याण करो, ईश्वर में मन लगाओ—रुपया कमाकर भर पेट खाने की अपेक्षा इसमें बहुत काम होते हैं।

फकीर की यह बात हठात् नानक के मन में ऐसी रुचिकर मालूम हुई कि वे चौंक उठे। फकीर के मुख की तरफ उन्होंने नजर उठाकर एक बार देखा और मूर्च्छित हो गये। मूर्च्छा के टूटते ही उन्होंने गरीब लोगों को बुलाया और जो कुछ शस्य था, सब ही उनमें बाँट दिया। फिर तो नानक घर में न रह सके। काम-काज सब छोड़कर वे भाग गये।

नानक भाग तो जरूर गये, किन्तु अनेक लोगों ने उनका साथ पकड़ लिया। जिनका धर्म की ओर खिंचाव रहता है, जिनमें मधुर भाव रहता है, जिनका स्वभाव महान् होता है, वे सबको भले ही छोड़ दें, उनको सभी नहीं छोड़ते। मर्दाना नामक एक व्यक्ति उनके साथ हो लिया। वह वीणा बजाता था, गाना गाता था। लेना भी उनके साथ चल पड़ा। वह जो पुराना नौकर लड़कपन में नानक के साथ, नमक बेचकर नफा में रुपया कमाने गया था, आज वह भी नानक के साथ है। इस बार भी शायद कुछ धन मिलने की आशा थी। किन्तु वह कोई जैसा-तैसा धन नहीं था, सभी धनों से श्रेष्ठ जो कर्म है, वही धर्म वह था। रामदास भी नानक को न छोड़ सका—उसकी उम्र ज्यादा हो गयी थी, इसीलिए सभी उसको बुढ़ऊ कहा करते थे। और कितने लोगों के नाम बताऊँ, ऐसे ही बहुत से लोग उनके साथ चले गये।

नानक यथासाध्य सबका उपकार करते हुए, सभी को धर्म का

उपदेश देते हुए देश-देश में घूमने लगे। हिन्दू-मुसलमान सभी को वे प्यार करते थे। हिन्दू धर्म में जो सब दोष थे, उनको भी वे कहते थे, मुसलमान धर्म में जितने दोष थे, उनको भी वे प्रकट करते थे। फिर भी, हिन्दू मुसलमान सब ही उनपर भक्ति रखते थे। नानक हमारे बङ्गदेश में भी आये थे। शिवनाभ नामक किसी देश के राजा ने बहुत तरह के लोभ दिखाकर नानक को कुमार्ग में ले जाने की चेष्टा की थी। किन्तु नानक अचल रह गये। उन्होंने राजा को ही धर्म की तरफ आकर्षित कर लिया।

मुगल सम्राट् बाबर के साथ एक बार नानक की भेंट हो गयी। नानक का साधुभाव देखकर, सन्तुष्ट होकर सम्राट् ने उनको बहुत रुपया पुरस्कार देना चाहा था, किन्तु नानक ने वह रुपया नहीं लिया। उन्होंने कहा—"जो जगदीश्वर सभी मनुष्यों को अन्न दे रहे हैं, अनुग्रह या पुरस्कार मैं उनसे ही पाना चाहता हूँ, और किसी से नहीं।"

नानक जब मक्का घूमने गये थे, तब एक दिन वे मसजिद की तरफ पैर कर सो रहे थे। यह देखकर एक मुसलमान को बहुत ही क्रोध हुआ। उसने उनको जगाकर कहा—"तुम कैसे आदमी हो जी। ईश्वर के मन्दिर की तरफ पैर रखकर सो रहे हो।"

नानक ने कहा—"अच्छा भाई, जगत् के जिस तरफ ईश्वर का मन्दिर नहीं है, उस तरफ मेरा पैर कर दो तो भला।"

नानक ने लोगों को भुलावे में डालने के लिए कोई आश्चर्य-जनक कौशल दिखाकर, कभी अपने को महान पुरुष के रूप में प्रचारित करने की इच्छा नहीं की। कहा जाता है कि—एक बार किसी ने उनसे कहा था—"अच्छा, तुम तो एक बड़े साधु हो—

हमलोगों को कोई एक आश्चर्य-जनक अलौकिक घटना दिखा दो।" नानक ने कहा—"तुम लोगों को दिखाने लायक मैं कुछ भी नहीं जानता। मैं केवल पवित्र धर्म की बातें जानता हूँ, और कुछ भी मैं नहीं जानता। ईश्वर सत्य है, और सब कुछ अस्थायी है।"

नानक अनेक देश-विदेशों में घूमते रहे, फिर स्वदेश को लौट कर गृहस्थ बन गये। अपने घर में रहकर वे सबको धर्मोपदेश देते रहते थे। वे कुरान-पुराण कुछ भी नहीं मानते थे। वे सभी को बुलाकर कहते थे—"एक ईश्वर की पूजा करो, धर्म में मन लगाओ। अन्य सब लोगों के दोषों को क्षमा करो, सबको प्यार करो।" इस प्रकार सारा जीवन धर्मपथ में रहकर सबको धर्मोपदेश देते हुए सत्तर वर्ष की अवस्था में नानक की मृत्यु हुई।

कालू अधिक काम के मनुष्य थे या कालू के लड़के नानक ज्यादा काम के मनुष्य थे, इसका हिसाब लगाकर आज हमें देख लेना है। आज तुम लोग जिस सिख जाति को देख रहे हो, जिनकी सुन्दर आकृति, महत् मुखश्री, विपुल बल, असीम साहस देखकर आश्चर्य मालूम होता है, वही सिख जाति के लोग नानक के शिष्य हैं। नानक के पहले यह जाति नहीं थी। नानक का महान भाव और धर्म-बल पाकर ही एक ऐसी महान जाति की उत्पत्ति हुई।

साहस का पुरस्कार

नेपोलियन बोनापार्ट का नाम तुम सभी लोग सुन चुके हो। एक बार उन्होंने अँग्रेजों के देश पर आक्रमण करने का निश्चय किया। जिस समय युद्ध का आयोजन हो रहा था, उसी समय किसी उपाय से एक अँग्रेजी जहाज का गोरा, फ्रान्सीसी सैनिकों द्वारा पकड़ लिया गया। शत्रु-पक्ष का मनुष्य देखकर फ्रान्सीसी उसको पकड़ कर अपने देश में ले आये। उन्होंने उसे समुद्र के किनारे छोड़ दिया। वह बेचारा अकेला समुद्र के किनारे घूमता-फिरता था। देश लौट जाने के लिए उसका प्राण रोता रहता था। समुद्र के उस पार ही उसका स्वदेश था। वह समुद्र भी कोई बहुत बड़ा नहीं था। यहाँ तक कि किसी-किसी दिन बादलों के फट जाने पर जब धूप निकल आती थी, तब इङ्गलैण्ड के सफेद-सफेद पहाड़ों की रेखाएँ नील समुद्र के ऊपर मेघ की तरह दिखाई पड़ती थीं। वह आकाश की ओर नजर उठाकर देखता रहता था, गरमी के दिनों में कितने ही छोटे-छोटे पक्षी पङ्ख फैलाये इङ्गलैण्ड की ओर उड़ते चले जा रहे थे।

एक दिन रात के समय आँधी आ गयी। प्रातःकाल नींद से उठने पर उसने देखा, एक पीपा समुद्र की तरङ्गों से तट-भूमि की तरफ बहता आ रहा है। उस पीपे को लेकर उसने एक पहाड़ के

गढ़े में छिपा रक्खा। सारा दिन लगातार बैठा-बैठा वह पीपे को तोड़-तोड़ कर नाव बनाता रहा। किन्तु वह गरीब था, नाव बनाने का सामान कहाँ पाता। उसने उस टूटे काठ के चारों तरफ, पेड़ की नरम टहनियों से बुनकर नाव की ही तरह एक चीज तैयार कर ली। अपने देश के लिए उसका प्राण इतना अधिक व्याकुल हो गया था कि, उसने एक बार भी इसपर विचार नहीं किया कि, यह नाव समुद्र के जल में एक दण्ड भी टिक सकेगी या नहीं। जो भी हो, उस नाव को लेकर जब वह समुद्र में बहाने जा रहा था, ऐसे ही समय में फ्रान्सीसी सैनिकों ने उसे देख लिया। फ्रान्सीसियों ने उसे पकड़ लिया। बेचारे ने बड़े ही कष्ट से जो नाव तैयार की थी, वह चलायी न जा सकी—इतने दिनों की उसकी आशा व्यर्थ हो गयी।

यह खबर किसी प्रकार नेपोलियन के कानों तक पहुँच गयी। नेपोलियन ने समुद्र के किनारे जाकर सब देखा। उन्होंने उस अँग्रेज युवक से कहा—"तुम्हारा यह कैसा साहस है? इन थोड़े से काठ और पेड़ की टहनियों को बाँध कर तुम समुद्र पार करना चाहते हो? देश में तुम्हारे कौन लोग हैं।"

उस अँग्रेज ने कहा—"मेरी माँ है। अपनी माँ को मैंने बहुत दिनों से नहीं देखा है। माँ को देखने के लिए मेरे प्राण बहुत व्याकुल हो गये हैं।" यह कहते-कहते उसकी आँखें छलछला उठीं।

नेपोलियन ने उसी क्षण कहा—अच्छा माँ के साथ तुम्हारी मुलाकात होगी, मैं मुलाकात करा दूँगा। जो लड़का इतना साहसी है, उसकी माँ कितनी महान चरित्र की होगी।"

नेपोलियन ने उसको एक मोहर दी, और अपने जहाज पर

चढ़ाकर उसे इङ्गलैण्ड भेज दिया। दुःख में पड़ने पर भी उस मोहर को उसने कभी नहीं तुड़वाया। नेपोलियन के दिये हुए उस मुहर को उसने, उसकी दया के स्मृति-स्वरूप चिरदिन अपने पास सञ्चित रक्खा था।

चैन से कटी। भोर में छः बजे के पहले स्टेशन पर गाड़ी रुक गयी। हमलोगों ने चाय पी ली। एक घण्टे के बाद सिलीगुड़ी स्टेशन पर गाड़ी पहुँच कर रुक गयी। इस स्थान से ट्रामगाड़ी पर चढ़कर पहाड़ पर चढ़ने की जरूरत पड़ती है। यहाँ आहार करने के लिए अच्छा स्थान है। ट्रामगाड़ी तैयार थी, उस पर सवार हो गया। इस जगह की ट्राम गाड़ियाँ नयी किस्म की होती हैं, अठारह गाड़ियों में से प्रथम और द्वितीय श्रेणी की गाडियाँ चारो तरफ काँच के ढक्कनों से ढकी हुई थीं, बाकी कुछ चितपुर रोड की ट्राम गाड़ियों की तरह खुली हुई थीं। इन खुली गाड़ियों पर चढ़ने से चारो तरफ का दृश्य खूब अच्छी तरह दिखाई पड़ता है, इस कारण हम ऐसी ही एक गाड़ी पर जा बैठे। सिलिगुड पहुँचने पर यात्रियों को गरम कपड़े पहनने पड़ते हैं। मैंने कपड़ा बदल लिया। ट्राम गाड़ी चल पड़ी। चारो तरफ धान के खेत थे, बीच बीच में चाय के खेतों की शोभा देखने को मिलती जा रही थी। इस प्रकार गाड़ी पहाड़ के नीचे आ गयी। अब पहाड़ के ऊपर चढ़ने का काम शुरू किया गया। एक घने शाल-बन के बीच से गाड़ी चली जा रही थी, चारो तरफ बड़े-बड़े शाल वृक्षों के सिवा और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। कुछ देर तक गाड़ी चक्कर काटती हुई एक खुली जगह में जा पहुँची। तब नीचे की तरफ नजर डालकर मैंने देखा कि, हम पहाड़ के ऊपर हैं। दायीं तरफ प्रकाण्ड पहाड़ मिलता तो बायीं तरफ खन्दक, कभी दायीं तरफ खन्दक मिलता तो बायीं तरफ पहाड़। ट्राम का रास्ता बहुत बड़े साँप की तरह पहाड़ को घेर कर थोड़ा थोड़ा ऊँचा होता हुआ उपर उठ गया था। इस प्रकार घूमते-घूमते हम चले जा रहे थे। बीच-बीच में स्टेशन थे। प्रथम स्टेशन सिलीगुड़ी से नौ कोस दूरी पर है, यहाँ ट्रेन पन्द्रह

मिनट ठहरती है। तीनदरिया से जब गाड़ी छूट गयी तब चारो तरफ बादल घने कुहरे की तरह सफेद होकर, चारो तरफ को घेरे हुए थे। बादलों के भीतर से गाड़ी चलने लगी। आसपास के मकानों के सिवा दूर की कोई भी चीज नहीं दिखाई पड़ती थी, सब कुछ हा बादलों से ढका हुआ था। जब गाड़ी एक कोस ऊपर पहुँच गयी, तब झम-झम करके वर्षा की झड़ी होने लगी। वृष्टि जब कम हुई और बादल जरा फटने लगे तो नीचे के पहाड़ की ओर देखा, वहाँ अच्छी तरह धूप नृत्य कर रही थी। ऐसा आश्चर्यजनक दृश्य देखते-देखते मम में यह खयाल उठा कि, पृथ्वी को छोड़कर ऊपर स्वर्ग के मार्ग से जा रहा हूँ। प्रायः पन्द्रह मिनट के बाद—मैं गयाबाड़ी स्टेशन पर जा पहुँचा। यहाँ से जब गाड़ी छूटती है, तब नीचे के पहाड़ों पर कुछ चाय के खेत दिखाई पड़ते हैं। दूर से ये चाय के खेत अत्यन्त सुन्दर दिखाई पड़ते हैं। जान पड़ता है कि किसी ने शायद पहाड़ के शरीर पर छोटे-छोटे हरे रङ्ग के तिलक लगा दिये हैं। इसके बाद हमलोग कुर्सियाङ्ग स्टेशन पर जा पहुँचे। पहले यह स्थान एक छोटा-सा पहाड़ी गाँव मात्र था। किन्तु क्रमशः पहाड़ के सभी स्टेशनों में यह एक प्रधान शहर के रूप में परिणत होता जा रहा है। कुर्सियांग ४५०० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। जब इस जगह मैं पहुँच गया, तब शीत से काँप रहा था।

इसके बाद का स्टेशन सोनादह एक छोटा-सा गाँव है। कुछ अस्वच्छ बाजार मात्र यहाँ दिखाई पड़ते हैं। यहाँ से गाड़ी छूटी तो घूम नामक स्टेशन पर पहुंचा। बहुतों का कथन है कि, पृथ्वी के किसी भी पहाड़ के ऊपर इतनी ऊँचाई पर रेलगाड़ी नहीं गयी है। यह स्थान ७४०० फुट की ऊँचाई पर है। दार्जिलिङ्ग इस स्थान से दो कोस नीचे स्थित है, इस कारण गाड़ी नीचे उतरने

लगी। उतरते समय दायीं तरफ 'जला' पहाड़ के ऊपर सैनिकों का कुछ बैरक दिखाई पड़ता है, और बायीं तरफ बहुत दूर 'टुएडलू' पर्वत और हिमालय का शृंग 'सिङ्ग लीला' और निकट ही के चाय खेत दिखाई पड़ते हैं। जब एक कोस नीचे गाड़ी उतर पड़ी, तब दूर से दार्जिलिंग के छोटे-छोटे सफेद मकान पहाड़ के ऊपर छबि की भाँति प्रतीत होने लगे। इस प्रकार बादल-वर्षा धूप के बीच से, पहाड़, नदी निर्झर और विभिन्न प्रकार के दृश्यों को देखते-देखते हमलोग दार्जिलिंग आ पहुँचे। सिलिगुड़ी से दार्जिलिंग चौबीस कोस दूर है और वहाँ से दार्जिलिंग पहुँचने में छः घण्टे का समय लग जाता है। ये छः घण्टे कितनी सुन्दर रीति से बीत जाते हैं, यह लिखकर वर्णन करने में, मैं बिलकुल ही असमर्थ हूँ। दिन में दस बजे के समय सिलिगुड़ी छोड़कर तीसरे पहर चार बजे मैं दार्जिलिंग पहुँच गया।

अकबर शाह की उदारता

एक प्राचीन अंग्रेज भ्रमणकारी ने अकबर शाह की उदारता के सम्बन्ध में एक कहानी सुनाई है। वह कहानी नीचे दी जा रही है।

अकबर शाह की मातृभक्ति अत्यन्त प्रबल थी। यहाँ तक कि, एक समय जब उनकी माँ पालकी पर चढ़कर लाहौर से आगरा जा रही थीं, तब अकबर और उनकी देखादेखी अन्यान्य बड़े-बड़े उमराव लोग अपने कंधों पर पालकी लेकर उनको नदी के उस पार ले गये थे। सम्राट की माँ, सम्राट को जो भी बात कहती थीं वे उसका ही पालन करते थे। केवल माँ की एक ही आज्ञा का पालन अकबर शाह ने नहीं किया था। सम्राट की माँ को समाचार मिला था कि, पुर्तगाली नाविकों ने एक मुसलमान जहाज को लूट लिया है, लूट के समय उनको एक कुरान ग्रन्थ मिला था, और उस ग्रन्थ को एक कुत्ते के गले में बाँधकर उनलोगों ने बाजे बजाते हुए अर्मज शहर की प्रदक्षिणा की थी। इस समाचार से क्रुद्ध होकर सम्राट की माता ने अकबर से अनुरोध किया था कि, एक बायबिल ग्रन्थ गधे के गले में बाँधकर आगरा शहर में घुमाने की व्यवस्था की जाय। सम्राट ने इसके उत्तर में कहा था—"जो निन्दनीय कार्य पुर्तगालियों के लिए शोभनीय है, वह काम एक सम्राट् के लिए

अत्यन्त गर्हित है, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। किसी भी धर्म के प्रति घृणा प्रदर्शन करने से ईश्वर के प्रति ही घृणा प्रदर्शन करना होता है। इस कारण मैं एक निरीह ग्रन्थ के ऊपर अपनी प्रतिशोध-स्पृहा को चरितार्थ नहीं कर सकता।"

साईस का लड़का

एक सौ वर्ष से भी अधिक बीत चुके हैं, जब कि जर्मनी के एक छोटे से प्रदेश में चार्ल्स नामक राजा राज्य कर रहे थे। एक दिन राजा भोजन करने के बाद उठ पड़े और आ ही रहे थे कि, उसी समय उन्होंने सुना, उनके राजभवन के सामने बहुत से लोग जमा हुए हैं। बाहर आकर उन्होंने देखा, लड़कों का एक दल राजा के पास एक निवेदन करने आया हुआ है। राजा के साईस का एक लड़का था, जिसका नाम था डानेकर। उसके पैरों में जूते नहीं थे, शरीर पर मैले कुचैले कपड़े थे। उसने अग्रसर होकर राजा को अपनी प्रार्थना सुनायी। राजा का एक स्कूल था, जिसमें केवल उनके सैनिकों के लड़के पढ़ते थे। सम्प्रति यह बात सुनाई पड़ी कि राजा ने नया नियम बनाया है जिसके अनुसार दूसरे लड़के भी उसमें पढ़ने सकेंगे। यही सुनकर राजा के उस स्कूल में भर्ती होने के लिए ये लोग प्रार्थना करने आये हैं।

साईस का लड़का डानेकर चित्र अङ्कित करना बहुत पसन्द करता था। वह जमीन पर, दीवाल पर जहाँ भी हो सकता था, खड़िया मिट्टी से विविध प्रकार के चित्र बनाया करता था। वह जानता था, राजा के स्कूल में चित्र अंकन करने की विद्या सिखायी जाती है। इस कारण, जब उसने सुना कि, राजा के स्कूल में सभी

जा सकते हैं, तब बहुत खुश होकर उस स्कूल में भर्ती होने के लिए अपने पिता के पास उसने प्रस्ताव रक्खा। पिता बिगड़ उठा, गरम होकर बोला—"तुम अपने ही काम में मन लगाओ बेटा, लिखने-पढ़ने की कोई जरूरत नहीं है।" यह कहकर उसे पीटा और कमरे में बन्द कर दिया।

डानेकर कोठरी की खिड़की की राह से निकल भागा और अपने ही समवयस्क लड़कों का एक दल जुटाकर स्वयं राजद्वार पर जा पहुँचा। राजा सन्तुष्ट होकर डानेकर को स्कूल में भेजने को राजी हो गए।

डानेकर के पिता ने देखा, लड़का स्कूल में जाने लगेगा तो अस्तबल के काम-काज में कुछ असुविधा होगी—बहुत ही नाराज होकर उसने लड़के को मार पीटकर घर से निकाल बाहर किया। किन्तु लड़के की माँ कुछ पहनने के कपड़े गठरी में बाँधकर उसके साथ चल पड़ी, और थोड़ी दूर तक रास्ते में उसका साथ देकर उसने लड़के के कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना की और आँखों के आँसू पोछकर अपने घर वापस आ गयी।

डानेकर गरीब था। इस कारण स्कूल में कोई उसकी परवा नहीं करता था। वहाँ उसे आँगन में झाड़ू लगाना पड़ता था, नौकर का काम करना पड़ता था। सम्भवतः यत्नपूर्वक कोई उसको पढ़ाना-लिखाना नहीं चाहता था। अधिकांश समय में डानेकर को छिपकर सीखना पड़ता था।

स्कूल में चित्रांकन-विद्या की शिक्षा समाप्त हो जाने पर, और भी अधिक सीखने के लिए डानेकर पैदल ही देश-विदेश में भ्रमण करता रहा। इस प्रकार बीस-पचीस वर्ष बीत गये।

अब इस डानेकर का नाम यूरोप के सभी स्थानों में विख्यात

है। डानेकर की तरह पत्थर की मूर्ति गढ़ने की कला बहुत कम लोग जानते हैं। जिस राजा के स्कूल में उनको पढ़ने की अनुमति मिली थी, उनका नाम आज बहुत ही कम लोगों को याद है किन्तु उसी राजा के साईस के लड़के का नाम यूरोप के देश-देश में फैलता जा रहा है।

सूर्य के सम्बन्ध में जानने योग्य बातें

सूर्य के सम्बन्ध में कोई बात कहने लगूँ, तो सम्भवतः तुमलोग क्रोधित हो जाओगे। कहोगे, हम क्या यह नहीं जानते कि, सूर्य पृथ्वी से बहुत दूर है, सूर्य पृथ्वी से बहुत बड़ा है, इत्यादि। किन्तु जरा धैर्य के साथ सोचोगे तो सभी बातें नितान्त पुरानी ही नहीं जान पड़ेंगीं।

वास्तव में सभी जानते हैं कि सूर्य पृथ्वी से साढ़े चार करोड़ कोस से भी अधिक दूरी पर है, किन्तु वह केवल जान लेने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। एक दो सौ कोस कितना होता है यही हमारी समझ में नहीं आता, तो फिर चार करोड़ कोस कैसे समझ में आयगा? यहाँ से सूर्य तक पहुँचने में कितना समय लगता है, उसका एक उदाहरण देने से भी यह बात कुछ तो समझ में आ ही जायगी। मान लो, जो रेलगाड़ी प्रति घंटे तीस कोस के वेग से चलती है, अर्थात् दो मिनट में एक कोस के वेग से चलती है, ऐसी ही गाड़ी पर चढ़कर तुम यदि १७१ वर्ष लगातार यात्रा करते रहो, तो तुम सूर्य के निकट पहुँच सकते हो।

सूर्य के पास पहुँचने पर तुम उसे कितना बड़ा देखते! अनैक्सागोरस नामक ग्रीस देशीय एक पण्डित ने पिलपनिसस प्रदेश की अपेक्षा सूर्य को बड़ा बताया तो, ग्रीस देश के लोगों ने उनका उपहास किया था। पिलपनिसस ग्रीस देश का एक भाग है। किन्तु

यदि वे लोग यह सुन लेते कि, सूर्य समस्त ग्रीस देश की अपेक्षा क्यों, पृथ्वी की भी अपेक्षा दस लाख गुना बड़ा है, तो उस हालत में वे क्या कहते कौन जानता है। यह पृथ्वी इतनी बड़ी है कि हमारा यह बङ्गदेश उसके ऊपर एक छोटा बिन्दु सा है।

एक द्रुतगामी रेलगाड़ी पर चढ़कर पृथ्वी के चारो तरफ घूमने में एक मास समय लग जाता है। हमारा देश पृथ्वी के निकट एक विन्दु की तरह है, किन्तु सूर्य के सामने पृथ्वी का आयतन कुछ भी नहीं है। क्योंकि पृथ्वी का व्यास चार हजार कोस है, और सूर्य का व्यास चार लाख छब्बीस हजार कोस है। पृथ्वी को और सूर्य को यदि तरबूजे की तरह बीचोबीच अलग-अलग दो-दो खण्डों में काट दिया जाय और पृथ्वी के काटे हुए अंश को सूर्य के कटे हुए अंश के ऊपर रख दिया जाय तो, ऐसी १०६ पृथ्वी कतार बाँध कर रख देने पर, सूर्य की व्यास रेखा पूरी हो सकेगी।

सूर्य का समस्त आयतन कितना बड़ा है यदि तुम जान लेना चाहो तो उस हालत में उसको तुम एक खोखला गोला की तरह मान लो और उसके बाद देखो कि कितनी पृथ्वी के होने से उसका पेट भरता है। दस लाख एकतीस हजार पृथ्वी इसके भीतर सहूलियत से अँट सकती है। हमारे पेट में इतनी संख्या में तिल अँट सकती है या नहीं, इसमें सन्देह है।

यह तो मैं समझ गया कि सूर्य कितना बड़ा है। किन्तु इसके प्रकाश और उत्ताप का परिमाण कितना है, इसकी धारणा मन में करना एक तरह से असम्भव ही है। विचार करके देखो, सूर्य की सभी किरणों में से कितनी थोड़ी-सी किरणें हमारी इस छोटी-सी पृथ्वी के ऊपर पड़ती हैं, फिर भी वैशाख मास में इतनी सी ही किरणें हमारे लिए कितनी प्रखर मालूम होती हैं। कमरे में जो

दीपक जल रहा है, उसका प्रकाश चारो तरफ बिखर रहा है। एक छोटा-सा सरसों लाकर दीपक से कुछ दूर रख देने पर जितना प्रकाश उस सरसों के ऊपर पड़ता है, उतना ही प्रकाश हमारी पृथ्वी के ऊपर भी पड़ता है और उसी से पृथ्वी का सब काम चल जाता है। यदि तुम सूर्य किरण की प्रखरता का परीक्षा करना चाहते हो तो उस हालत में आतस-शीशे की सहायता से सहज ही में कर सकते हो। आतस-काँच सूर्य के सामने रख देने से उसकी किरणें उस शीशे के भीतर से बाहर आकर बिन्दु के आकार में मिल जाती हैं। उसी जगह पर एक टुकड़ा कागज रखने से वह जल उठता है। तो भी, सूर्य किरणों का पूरा अत्याचार हमें सहन करना नहीं पड़ता। सूर्य के उत्ताप से जल के कण हवा में बिखर पड़ते हैं, उसके कारण हवा बहुत कुछ ठंढी हो रहती है, ऐसा नहीं होने से सूर्य किरणों की प्रचण्डता से हमारे लिए टिका रहना कठिन हो जाता।

सूर्य किरण की तरंगे

सूर्य किरण कौन सी वस्तु है यह प्रश्न करने से तुम लोग कहोगे—सूर्यकिरण सूर्य की किरण है, सूर्य का प्रकाश है—और क्या है। सूर्य की किरणों के सम्बन्ध में और भी बहुत-सी बातें जानने योग्य हैं। सूर्य की किरणें सूर्य से आकर पृथ्वी को स्पर्श करती हैं, इसी कारण, मेरे विचार से उन्हें सूर्य का कर अर्थात् सूर्य का हाथ कहा जाता है। किन्तु सूर्यकिरण को ठीक सूर्य का हाथ नहीं कह सकते।—क्यों नहीं कह सकते यह मैं नीचे लिख कर समझा रहा हूँ।

मान लो एक पोखरी है, जिसके दोनों पाटों पर दो घाट हैं, एक घाट पर तुम स्नान कर रहे हो, एक घाट पर मैं स्नान कर रहा हूँ। दूर से तुमको आघात करना हो तो उस हालत में या तो ढेला फेंक कर तुमको मारना पड़ेगा, अथवा जल में ऐसी एक झकझोर लगा देनी पड़ेगी, कि इस पाट से जल की तरङ्गें जाकर उस पार तुम्हारे शरीर पर लग जाये। तुम्हारे साथ मैं जब बातें करता हूँ तब किस तरह वह शब्द तुम्हारे कानों में जाता है। मेरे मुख से तो कोई भी चीज तुम्हारे कानों में फेंकी नहीं जाती? वस्तुतः मेरे मुख के पास हवा हिल जाने से चञ्चल हो उठती है—इसी प्रकार हवा में तरंगे उठकर एक के बाद और एक के क्रम से अन्त में

तुम्हारे कानों में ढकने की तरह जो चमड़ा है उसपर आघात करती है। दूर की वस्तु पर आघात करने के इन दो प्रकार के उपायों को हम जानते हैं। पहला है किसी वस्तु को फेंककर और आघात करके; दूसरा है वस्तु के प्रति तरङ्ग प्रदान करके—जल और हवा की तरंगें इसके लिए उदाहरण हैं।

पण्डित न्यूटन को विश्वास था कि, सूर्यकिरण अति छोटे-छोटे कणों से निर्मित हैं। सूर्य उन किरणों को हमारी आँखों के ऊपर फेंककर निरन्तर आघात कर रहा है। कणों के आघात से हम प्रकाश को देख पाते हैं। बहुत दिनों तक लोग न्यूटन के इस मत को सत्य मानते आ रहे थे। पीछे इसपर उनका अविश्वास हो गया।

पण्डितों का कथन है, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, तारा और हमारी पृथ्वी, इनके मध्य भाग के आकाश में ऐसी कोई वस्तु अवश्य ही है जो हवा और जल की अपेक्षा बहुत ही सूक्ष्म है। इतनी सूक्ष्म कि, काठ, ईंट, आदि की तरह दृढ़ वस्तु के भीतर से इसका गमनागमन होता रहता है। इसको भी हम देख नहीं सकते। इसको हम 'ईथर' कहते हैं। यह ईथर समस्त आकाश को परिपूर्ण किये हुए है। जब तक तुमलोग स्वयं ईथर के सम्बन्ध में मीमांसा करने में समर्थ नहीं हो जाते तब तक तुमलोग विद्वानों की बात पर विश्वास कर यही मान लो कि, अवश्य ही ईथर सब स्थानों में व्याप्त हो रहा है, और सभी वस्तुओं के भीतर से उसका आवागमन होता रहता है। सूर्य और अन्यान्य ग्रह-तारे इसी ईथर के बीच चल रहे हैं। इस कारण सूर्य या ग्रह-तारों में यदि एक आन्दोलन उपस्थित हो जाय तो इस ईथर में अवश्य ही उसका आघात लगेगा। जल के भीतर यदि मछली छटपटाने लगे, तो उससे उसके

चारो तरफ जल हिलने लगेगा। सूर्य के चारो तरफ विविध प्रकार के गैस अर्थात् वायव पदार्थ तुमुल आन्दोलन कर रहे हैं। इस गैस के बीच रहने वाले छोटे-छोटे कण खूब जोर से स्पन्दित होकर और एक दूसरे को लगातार आघात कर जब सूर्य में इतना प्रकाश और उत्ताप उत्पन्न कर रही हैं, तब क्या तुम्हारे मन में यह भाव नहीं उठता कि, इस प्रबल घर्षण से और स्पन्दन से सूर्य के चारो तरफ ईथर भी काँपने लगेगा। वही ईथर जब कि सूर्य और पृथ्वी के बीच के समस्त स्थानों को व्याप्त किये हुए है, तब क्या तुमलोगों के मन में यह विचार नहीं उठता कि, पोखरी के जल की तरङ्गों की भाँति सूर्य के निकट का ईथर काँप कर हमारे पास तरङ्गे भेज रहा है। सूर्य के चारो ओर से लगातार एक के बाद एक करके छोटी-छोटी तरङ्गें इस प्रकार ईथर का सहारा लेकर हमारी पृथ्वी पर आ जाती हैं। पृथ्वी के मध्य में स्थित भारतवर्ष का अंश जब सूर्य के सामने आ जाता है, तब वे तरङ्गे भारतवर्ष के जलस्थल को आघात करके उत्तप्त कर देती हैं और हमारे नेत्रों की स्नायुमण्डली पर आघात करती हैं इसीलिए हम लोग प्रकाश को देख पाते हैं। सूर्य की सहस्र-सहस्र तरंगें हमारी आँखों के ऊपर प्रति पल निरन्तर ही आघात करती रहेंगी तो उससे हम सारा दिन सर्व क्षण लगातार प्रकाश देखते रहेंगे, इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है। सूर्य जब अस्त हो जाता है, तब हमलोग नक्षत्रों के पास से कुछ कुछ प्रकाश पाते रहते हैं। वे सूर्य की अपेक्षा और भी अधिक दूरी पर स्थित हैं, इसीलिए हम इतना कम प्रकाश पाते हैं। सूर्य जब तक अस्त नहीं हो जाता, तब तक उनको हम देख नहीं पाते। आश्चर्य की बात यह है कि, ईथर की तरङ्गों को हमने ठीक देखा नहीं है यह तो सच ही है, किन्तु उनको हमने नाप लिया है, वे

कितनी बड़ी हैं इसे हम जानते हैं। एक इञ्च परिमित स्थान में जितनी तरङ्गे प्रवेश कर सकती हैं, इसे भी हम जान गये हैं। किस तरह इन्हें नाप लिया गया है, इस बात को समझाने की चेष्टा करने से बहुत उलझनें उपस्थित हो जायँगी। समझ में न आने की ही अधिक सम्भावना है। इतनी ही बात जान रक्खो कि, ईथर की कोई-कोई तरङ्ग इतनी छोटी है कि एक इञ्च परिमित स्थान में प्रायः पचास हजार तरंगे अँट सकती हैं।

अब यह देख लेना चाहिये कि किस वेग से ये तरङ्गें चलती रहती हैं। द्रुतगामी रेलगाड़ी पर चढ़ने से १७१ वर्षों में सूर्य के पास पहुँचा जा सकता है, किन्तु सूर्य की ये सूक्ष्म तरंगें चार करोड़ पचास लाख कोस का रास्ता पार कर आठ मिनट में पृथ्वी पर आ जाती हैं। जो सब तरंगें तुम्हारी आँखों पर अभी आघात कर रही हैं, वे केवल आठ मिनट ही पहले सूर्य को छोड़कर आयी हैं। ये विश्राम न करके एक के बाद एक के क्रम से दिन पर्यन्त तुम लोगों की आँखों के ऊपर पड़ रही हैं।

सूर्य किरणों के कार्य

सूर्य किरणों की तरङ्गों के विषय में पहले हम लोग कुछ-कुछ जानकारी कर चुके हैं, किन्तु सूर्यकिरण की उन तरङ्गों के द्वारा हमारी पृथ्वी में क्या-क्या काम हो रहे हैं, यह लिखकर सूर्य के विषय में वक्तव्य समाप्त कर दूँगा। पहले यह बता देने की आवश्यकता है कि, सूर्य किरणों की सहायता से हम किस तरह देख पाते हैं। सूर्य के उदित हो जाने पर सूर्यकिरण का तरङ्गें प्रत्येक वस्तु पर आघात करती हैं, और उनके पास से वापस आते ही वे ही फिर हमारी आँखों के ऊपर आ पड़ती हैं। ये तरङ्गे हमारी आँखों में प्रवेश कर आँखों की स्नायु-मण्डली को जब चञ्चल बना देती हैं, तब हम प्रत्येक वस्तु का आकार अपने मस्तिष्क में धारण कर सकते हैं। कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं, जो उन वस्तुओं को हमारी आँखों में लौटाती नहीं हैं, वरन अधिकांश तरङ्गों को अपने ही भीतर से प्रवेश करने देती हैं, जैसे काँच। इसीलिए इस श्रेणी की वस्तुओं को हम स्वच्छ-पदार्थ कहा करते हैं। फिर ऐसी कुछ धातुएँ हैं जो उन तरङ्गों को कुछ अंशों में प्रवेश करने देती हैं और अधिकांश को ही हमारी आँखों में लौटा देती हैं; जैसे उज्ज्वल चाँदी, इस्पात इत्यादि। दर्पण में जब हम अपना मुख देखते हैं, तब सूर्य की तरंगें पहले हमारे मुख पर आ पड़ती हैं, फिर आइने में लौट जाती

अकबर शाह की उदारता

एक प्राचीन अंग्रेज भ्रमणकारी ने अकबर शाह की उदारता के सम्बन्ध में एक कहानी सुनाई है। वह कहानी नीचे दी जा रही है।

अकबर शाह की मातृभक्ति अत्यन्त प्रबल थी। यहाँ तक कि, एक समय जब उनकी माँ पालकी पर चढ़कर लाहौर से आगरा जा रही थीं, तब अकबर और उनकी देखादेखी अन्यान्य बड़े-बड़े उमराव लोग अपने कंधों पर पालकी लेकर उनको नदी के उस पार ले गये थे। सम्राट की माँ, सम्राट को जो भी बात कहती थीं वे उसका ही पालन करते थे। केवल माँ की एक ही आज्ञा का पालन अकबर शाह ने नहीं किया था। सम्राट की माँ को समाचार मिला था कि, पुर्तगाली नाविकों ने एक मुसलमान जहाज को लूट लिया है, लूट के समय उनको एक कुरान ग्रन्थ मिला था, और उस ग्रन्थ को एक कुत्ते के गले में बाँधकर उनलोगों ने बाजे बजाते हुए अर्मज शहर की प्रदक्षिणा की थी। इस समाचार से क्रुद्ध होकर सम्राट की माता ने अकबर से अनुरोध किया था कि, एक बायबिल ग्रन्थ गधे के गले में बाँधकर आगरा शहर में घुमाने की व्यवस्था की जाय। सम्राट ने इसके उत्तर में कहा था—"जो निन्दनीय कार्य पुर्तगालियों के लिए शोभनीय है, वह काम एक सम्राट् के लिए

अत्यन्त गर्हित है, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। किसी भी धर्म के प्रति घृणा प्रदर्शन करने से ईश्वर के प्रति ही घृणा प्रदर्शन करना होता है। इस कारण मैं एक निरीह ग्रन्थ के ऊपर अपनी प्रतिशोध-स्पृहा को चरितार्थ नहीं कर सकता।"

साईस का लड़का

एक सौ वर्ष से भी अधिक बीत चुके हैं, जब कि जर्मनी के एक छोटे से प्रदेश में चार्ल्स नामक राजा राज्य कर रहे थे। एक दिन राजा भोजन करने के बाद उठ पड़े और आ ही रहे थे कि, उसी समय उन्होंने सुना, उनके राजभवन के सामने बहुत से लोग जमा हुए हैं। बाहर आकर उन्होंने देखा, लड़कों का एक दल राजा के पास एक निवेदन करने आया हुआ है। राजा के साईस का एक लड़का था, जिसका नाम था डानेकर। उसके पैरों में जूते नहीं थे, शरीर पर मैले कुचैले कपड़े थे। उसने अग्रसर होकर राजा को अपनी प्रार्थना सुनायी। राजा का एक स्कूल था, जिसमें केवल उनके सैनिकों के लड़के पढ़ते थे। सम्प्रति यह बात सुनाई पड़ी कि राजा ने नया नियम बनाया है जिसके अनुसार दूसरे लड़के भी उसमें पढ़ने सकेंगे। यही सुनकर राजा के उस स्कूल में भर्ती होने के लिए ये लोग प्रार्थना करने आये हैं।

साईस का लड़का डानेकर चित्र अङ्कित करना बहुत पसन्द करता था। वह जमीन पर, दीवाल पर जहाँ भी हो सकता था, खड़िया मिट्टी से विविध प्रकार के चित्र बनाया करता था। वह जानता था, राजा के स्कूल में चित्र अंकन करने की विद्या सिखायी जाती है। इस कारण, जब उसने सुना कि, राजा के स्कूल में सभी

जा सकते हैं, तब बहुत खुश होकर उस स्कूल में भर्ती होने के लिए अपने पिता के पास उसने प्रस्ताव रक्खा। पिता बिगड़ उठा, गरम होकर बोला—"तुम अपने ही काम में मन लगाओ बेटा, लिखने-पढ़ने की कोई जरूरत नहीं है।" यह कहकर उसे पीटा और कमरे में बन्द कर दिया।

डानेकर कोठरी की खिड़की की राह से निकल भागा और अपने ही समवयस्क लड़कों का एक दल जुटाकर स्वयं राजद्वार पर जा पहुँचा। राजा सन्तुष्ट होकर डानेकर को स्कूल में भेजने को राजी हो गए।

डानेकर के पिता ने देखा, लड़का स्कूल में जाने लगेगा तो अस्तबल के काम-काज में कुछ असुविधा होगी—बहुत ही नाराज होकर उसने लड़के को मार पीटकर घर से निकाल बाहर किया। किन्तु लड़के की माँ कुछ पहनने के कपड़े गठरी में बाँधकर उसके साथ चल पड़ी, और थोड़ी दूर तक रास्ते में उसका साथ देकर उसने लड़के के कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना की और आँखों के आँसू पोंछकर अपने घर वापस आ गयी।

डानेकर गरीब था। इस कारण स्कूल में कोई उसकी परवा नहीं करता था। वहाँ उसे आँगन में झाड़ू लगाना पड़ता था, नौकर का काम करना पड़ता था। सम्भवतः यत्नपूर्वक कोई उसको पढ़ाना-लिखाना नहीं चाहता था। अधिकांश समय में डानेकर को छिपकर सीखना पड़ता था।

स्कूल में चित्रांकन-विद्या की शिक्षा समाप्त हो जाने पर, और भी अधिक सीखने के लिए डानेकर पैदल ही देश-विदेश में भ्रमण करता रहा। इस प्रकार बीस-पचीस वर्ष बीत गये।

अब इस डानेकर का नाम यूरोप के सभी स्थानों में विख्यात

है। डानेकर की तरह पत्थर की मूर्ति गढ़ने की कला बहुत कम लोग जानते हैं। जिस राजा के स्कूल में उनको पढ़ने की अनुमति मिली थी, उनका नाम आज बहुत ही कम लोगों को याद है किन्तु उसी राजा के साईस के लड़के का नाम यूरोप के देश-देश में फैलता जा रहा है।

सूर्य के सम्बन्ध में जानने योग्य बातें

सूर्य के सम्बन्ध में कोई बात कहने लगूँ, तो सम्भवतः तुमलोग क्रोधित हो जाओगे। कहोगे, हम क्या यह नहीं जानते कि, सूर्य पृथ्वी से बहुत दूर है, सूर्य पृथ्वी से बहुत बड़ा है, इत्यादि। किन्तु जरा धैर्य के साथ सोचोगे तो सभी बातें नितान्त पुरानी ही नहीं जान पड़ेंगी।

वास्तव में सभी जानते हैं कि सूर्य पृथ्वी से साढ़े चार करोड़ कोस से भी अधिक दूरी पर है, किन्तु वह केवल जान लेने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। एक दो सौ कोस कितना होता है यही हमारी समझ में नहीं आता, तो फिर चार करोड़ कोस कैसे समझ में आयगा? यहाँ से सूर्य तक पहुँचने में कितना समय लगता है, उसका एक उदाहरण देने से भी यह बात कुछ तो समझ में आ ही जायगी। मान लो, जो रेलगाड़ी प्रति घंटे तीस कोस के वेग से चलती है, अर्थात् दो मिनट में एक कोस के वेग से चलती है, ऐसी ही गाड़ी पर चढ़कर तुम यदि १७१ वर्ष लगातार यात्रा करते रहो, तो तुम सूर्य के निकट पहुँच सकते हो।

सूर्य के पास पहुँचने पर तुम उसे कितना बड़ा देखते! अनैक्सागोरस नामक ग्रीस देशीय एक पण्डित ने पिलपनिसस प्रदेश की अपेक्षा सूर्य को बड़ा बताया तो, ग्रीस देश के लोगों ने उनका उपहास किया था। पिलपनिसस ग्रीस देश का एक भाग है। किन्तु

यदि वे लोग यह सुन लेते कि, सूर्य समस्त ग्रीस देश की अपेक्षा क्यों, पृथ्वी की भी अपेक्षा दस लाख गुना बड़ा है, तो उस हालत में वे क्या कहते कौन जानता है। यह पृथ्वी इतनी बड़ी है कि हमारा यह बङ्गदेश उसके ऊपर एक छोटा बिन्दु सा है।

एक द्रुतगामी रेलगाड़ी पर चढ़कर पृथ्वी के चारो तरफ घूमने में एक मास समय लग जाता है। हमारा देश पृथ्वी के निकट एक बिन्दु की तरह है, किन्तु सूर्य के सामने पृथ्वी का आयतन कुछ भी नहीं है। क्योंकि पृथ्वी का व्यास चार हजार कोस है, और सूर्य का व्यास चार लाख छब्बीस हजार कोस है। पृथ्वी को और सूर्य को यदि तरबूजे की तरह बीचोबीच अलग-अलग दो-दो खण्डों में काट दिया जाय और पृथ्वी के काटे हुए अंश को सूर्य के कटे हुए अंश के ऊपर रख दिया जाय तो, ऐसी १०६ पृथ्वी कतार बाँध कर रख देने पर, सूर्य की व्यास रेखा पूरी हो सकेगी।

सूर्य का समस्त आयतन कितना बड़ा है यदि तुम जान लेना चाहो तो उस हालत में उसको तुम एक खोखला गोला की तरह मान लो और उसके बाद देखो कि कितनी पृथ्वी के होने से उसका पेट भरता है। दस लाख एकतीस हजार पृथ्वी इसके भीतर सहूलियत से अँट सकती है। हमारे पेट में इतनी संख्या में तिल अँट सकती है या नहीं, इसमें सन्देह है।

यह तो मैं समझ गया कि सूर्य कितना बड़ा है। किन्तु इसके प्रकाश और उत्ताप का परिमाण कितना है, इसकी धारणा मन में करना एक तरह से असम्भव ही है। विचार करके देखो, सूर्य की सभी किरणों में से कितनी थोड़ी-सी किरणें हमारी इस छोटी-सी पृथ्वी के ऊपर पड़ती हैं, फिर भी वैशाख मास में इतनी सी ही किरणें हमारे लिए कितनी प्रखर मालूम होती हैं। कमरे में जो

मुकुट

दीपक जल रहा है, उसका प्रकाश चारो तरफ बिखर रहा है। एक छोटा-सा सरसों लाकर दीपक से कुछ दूर रख देने पर जितना प्रकाश उस सरसों के ऊपर पड़ता है, उतना ही प्रकाश हमारी पृथ्वी के ऊपर भी पड़ता है और उसी से पृथ्वी का सब काम चल जाता है। यदि तुम सूर्य किरण की प्रखरता का परीक्षा करना चाहते हो तो उस हालत में आतस-शीशे की सहायता से सहज ही में कर सकते हो। आतस-काँच सूर्य के सामने रख देने से उसकी किरणें उस शीशे के भीतर से बाहर आकर बिन्दु के आकार में मिल जाती हैं। उसी जगह पर एक टुकड़ा कागज रखने से वह जल उठता है। तो भी, सूर्य किरणों का पूरा अत्याचार हमें सहन करना नहीं पड़ता। सूर्य के उत्ताप से जल के कण हवा में बिखर पड़ते हैं, उसके कारण हवा बहुत कुछ ठंढी हो रहती है, ऐसा नहीं होने से सूर्य किरणों की प्रचण्डता से हमारे लिए टिका रहना कठिन हो जाता।

सूर्य किरण की तरंगे

सूर्य किरण कौन सी वस्तु है यह प्रश्न करने से तुम लोग कहोगे—सूर्यकिरण सूर्य की किरण है, सूर्य का प्रकाश है—और क्या है। सूर्य की किरणों के सम्बन्ध में और भी बहुत-सी बातें जानने योग्य हैं। सूर्य की किरणें सूर्य से आकर पृथ्वी को स्पर्श करती हैं, इसी कारण, मेरे विचार से उन्हें सूर्य का कर अर्थात् सूर्य का हाथ कहा जाता है। किन्तु सूर्यकिरण को ठीक सूर्य का हाथ नहीं कह सकते।—क्यों नहीं कह सकते यह मैं नीचे लिख कर समझा रहा हूँ।

मान लो एक पोखरी है, जिसके दोनों पाटों पर दो घाट हैं, एक घाट पर तुम स्नान कर रहे हो, एक घाट पर मैं स्नान कर रहा हूँ। दूर से तुमको आघात करना हो तो उस हालत में या तो ढेला फेंक कर तुमको मारना पड़ेगा, अथवा जल में ऐसी एक झकझोर लगा देनी पड़ेगी, कि इस पाट से जल की तरङ्गें जाकर उस पार तुम्हारे शरीर पर लग जाये। तुम्हारे साथ मैं जब बातें करता हूँ तब किस तरह वह शब्द तुम्हारे कानों में जाता है। मेरे मुख से तो कोई भी चीज तुम्हारे कानों में फेंकी नहीं जाती? वस्तुतः मेरे मुख के पास हवा हिल जाने से चञ्चल हो उठती है—इसी प्रकार हवा में तरंगे उठकर एक के बाद और एक के क्रम से अन्त में

तुम्हारे कानों में ढकने की तरह जो चमड़ा है उसपर आघात करती है। दूर की वस्तु पर आघात करने के इन दो प्रकार के उपायों को हम जानते हैं। पहला है किसी वस्तु को फेंककर और आघात करके; दूसरा है वस्तु के प्रति तरङ्ग प्रदान करके—जल और हवा की तरंगें इसके लिए उदाहरण हैं।

पण्डित न्यूटन को विश्वास था कि, सूर्यकिरण अति छोटे-छोटे कणों से निर्मित हैं। सूर्य उन किरणों को हमारी आँखों के ऊपर फेंककर निरन्तर आघात कर रहा है। कणों के आघात से हम प्रकाश को देख पाते हैं। बहुत दिनों तक लोग न्यूटन के इस मत को सत्य मानते आ रहे थे। पीछे इसपर उनका अविश्वास हो गया।

पण्डितों का कथन है, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, तारा और हमारी पृथ्वी, इनके मध्य भाग के आकाश में ऐसी कोई वस्तु अवश्य ही है जो हवा और जल की अपेक्षा बहुत ही सूक्ष्म है। इतनी सूक्ष्म कि, काठ, ईंट, आदि की तरह दृढ़ वस्तु के भीतर से इसका गमनागमन होता रहता है। इसको भी हम देख नहीं सकते। इसको हम 'ईथर' कहते हैं। यह ईथर समस्त आकाश को परिपूर्ण किये हुए है। जब तक तुमलोग स्वयं ईथर के सम्बन्ध में मीमांसा करने में समर्थ नहीं हो जाते तब तक तुमलोग विद्वानों की बात पर विश्वास कर यही मान लो कि, अवश्य ही ईथर सब स्थानों में व्याप्त हो रहा है, और सभी वस्तुओं के भीतर से उसका आवागमन होता रहता है। सूर्य और अन्यान्य ग्रह-तारे इसी ईथर के बीच चल रहे हैं। इस कारण सूर्य या ग्रह-तारों में यदि एक आन्दोलन उपस्थित हो जाय तो इस ईथर में अवश्य ही उसका आघात लगेगा। जल के भीतर यदि मछली छटपटाने लगे, तो उससे उसके

चारो तरफ जल हिलने लगेगा। सूर्य के चारो तरफ विविध प्रकार के गैस अर्थात् वायव पदार्थ तुमुल आन्दोलन कर रहे हैं। इस गैस के बीच रहने वाले छोटे-छोटे कण खूब जोर से स्पन्दित होकर और एक दूसरे को लगातार आघात कर जब सूर्य में इतना प्रकाश और उत्ताप उत्पन्न कर रही हैं, तब क्या तुम्हारे मन में यह भाव नहीं उठता कि, इस प्रबल घर्षण से और स्पन्दन से सूर्य के चारो तरफ ईथर भी काँपने लगेगा। वही ईथर जब कि सूर्य और पृथ्वी के बीच के समस्त स्थानों को व्याप्त किये हुए है, तब क्या तुमलोगों के मन में यह विचार नहीं उठता कि, पोखरी के जल की तरङ्गों की भाँति सूर्य के निकट का ईथर काँप कर हमारे पास तरङ्गे भेज रहा है। सूर्य के चारो ओर से लगातार एक के बाद एक करके छोटी-छोटी तरङ्गें इस प्रकार ईथर का सहारा लेकर हमारी पृथ्वी पर आ जाती हैं। पृथ्वी के मध्य में स्थित भारतवर्ष का अंश जब सूर्य के सामने आ जाता है, तब वे तरङ्गे भारतवर्ष के जलस्थल को आघात करके उत्तप्त कर देती हैं और हमारे नेत्रों की स्नायुमण्डली पर आघात करती हैं इसीलिए हम लोग प्रकाश को देख पाते हैं। सूर्य की सहस्र-सहस्र तरंगें हमारी आँखों के ऊपर प्रति पल निरन्तर ही आघात करती रहेंगी तो उससे हम सारा दिन सर्व क्षण लगातार प्रकाश देखते रहेंगे, इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है। सूर्य जब अस्त हो जाता है, तब हमलोग नक्षत्रों के पास से कुछ कुछ प्रकाश पाते रहते हैं। वे सूर्य की अपेक्षा और भी अधिक दूरी पर स्थित हैं, इसीलिए हम इतना कम प्रकाश पाते हैं। सूर्य जब तक अस्त नहीं हो जाता, तब तक उनको हम देख नहीं पाते। आश्चर्य की बात यह है कि, ईथर की तरङ्गों को हमने ठीक देखा नहीं है यह तो सच ही है, किन्तु उनको हमने नाप लिया है, वे

कितनी बड़ी हैं इसे हम जानते हैं। एक इञ्च परिमित स्थान में जितनी तरङ्गे प्रवेश कर सकती हैं, इसे भी हम जान गये हैं। किस तरह इन्हें नाप लिया गया है, इस बात को समझाने की चेष्टा करने से बहुत उलझनें उपस्थित हो जायँगी। समझ में न आने की ही अधिक सम्भावना है। इतनी ही बात जान रक्खो कि, ईथर की कोई-कोई तरङ्ग इतनी छोटी है कि एक इञ्च परिमित स्थान में प्रायः पचास हजार तरंगे अँट सकती हैं।

अब यह देख लेना चाहिये कि किस वेग से ये तरङ्गें चलती रहती हैं। द्रुतगामी रेलगाड़ी पर चढ़ने से १७१ वर्षों में सूर्य के पास पहुँचा जा सकता है, किन्तु सूर्य की ये सूक्ष्म तरंगें चार करोड़ पचास लाख कोस का रास्ता पार कर आठ मिनट में पृथ्वी पर आ जाती हैं। जो सब तरंगें तुम्हारी आँखों पर अभी आघात कर रही हैं, वे केवल आठ मिनट ही पहले सूर्य को छोड़कर आयी हैं। ये विश्राम न करके एक के बाद एक के क्रम से दिन पर्यन्त तुम लोगों की आँखों के ऊपर पड़ रही हैं।

सूर्य किरणों के कार्य

सूर्य किरणों की तरङ्गों के विषय में पहले हम लोग कुछ-कुछ जानकारी कर चुके हैं, किन्तु सूर्यकिरण की उन तरङ्गों के द्वारा हमारी पृथ्वी में क्या-क्या काम हो रहे हैं, यह लिखकर सूर्य के विषय में वक्तव्य समाप्त कर दूँगा। पहले यह बता देने की आवश्यकता है कि, सूर्य किरणों की सहायता से हम किस तरह देख पाते हैं। सूर्य के उदित हो जाने पर सूर्यकिरण की तरङ्गें प्रत्येक वस्तु पर आघात करती हैं, और उनके पास से वापस आते ही वे ही फिर हमारी आँखों के ऊपर आ पड़ती हैं। ये तरङ्गें हमारी आँखों में प्रवेश कर आँखों की स्नायु-मण्डली को जब चञ्चल बना देती हैं, तब हम प्रत्येक वस्तु का आकार अपने मस्तिष्क में धारण कर सकते हैं। कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं, जो उन वस्तुओं को हमारी आँखों में लौटाती नहीं हैं, वरन अधिकांश तरङ्गों को अपने ही भीतर से प्रवेश करने देती हैं, जैसे काँच। इसीलिए इस श्रेणी की वस्तुओं को हम स्वच्छ-पदार्थ कहा करते हैं। फिर ऐसी कुछ धातुएँ हैं जो उन तरङ्गों को कुछ अंशों में प्रवेश करने देती हैं और अधिकांश को ही हमारी आँखों में लौटा देती हैं; जैसे उज्ज्वल चाँदी, इस्पात इत्यादि। दर्पण में जब हम अपना मुख देखते हैं, तब सूर्य की तरंगें पहले हमारे मुख पर आ पड़ती हैं, फिर आइने में लौट जाती

हैं, वे फिर आईने से लौटकर जब हमारी आँखों के तारों के भीतर प्रवेश करती हैं, तब हम अपना मुख आप ही देख पाते हैं।

सूर्य किरणों का एक और गुण है। वास्तविकता तो यह है कि, संसार में किसी भी चीज का कोई रङ्ग नहीं है। सूर्यकिरणों से ही सभी तरह-तरह के रङ्ग पाते रहते हैं। सूर्यकिरणों में इन्द्रधनुष के सातो रंग विद्यमान है, यह बात सभी जानते हैं। किन्तु सूर्य-किरणों में वे सातो रंग किस प्रकार हैं यह बताने से शायद किसी को विरक्ति न मालूम होगी।

हम पहले सूर्य किरण को तरङ्ग कह चुके हैं। अब यह समझ लेना होगा कि, बहुत से भिन्न आयतनों की तरङ्गे एक साथ कतार बाँधकर आ रही हैं। सात रंग विभिन्न आयतनों की सात तरङ्गे हैं। लाल रंग की तरङ्गे सबसे बड़ी हैं। किन्तु ये तरङ्गे आयतन में पृथक् होने पर भी, इनकी गति के वेग परिमाण में कोई भेद नहीं है, सभी तरङ्गे प्रति सेकेण्ड ९३००० कोस चलती हैं। जिन तरङ्गो के द्वारा वायलेट नामक एक प्रकार के बैगनी रङ्ग का प्रकाश निकलता है, वे सर्वापेक्षा छोटी हैं और कार्य करने में समर्थ हैं। इसके सिवा नारङ्गी का रङ्ग, हरा रंग, नीली रंग, घोर नीले रंग की तरङ्गे भिन्न आयतनों में हैं। एक इञ्च परिमित जगह में यदि ३९००० लाल रंग की तरङ्गे रहें, तो उस हालत में उसी जगह में ५७००० बैगनी रंग की तरङ्गे रहती हैं, यह परीक्षा द्वारा जान लिया गया है।

अब तुम लोग प्रश्न कर सकते हो कि, सूर्य किरण की ये सब विभिन्न रंग की तरङ्गे जब हमारी आँखों में आघात कर रही हैं, तब हम लोग रंगीन प्रकाश सर्वदा क्यों नहीं देख पाते। नियमित माप से लाल, नारंगी का रंग, पीला रंग, हरा, नीला, घोर नील और बैगनी, इन कई रंगों को यदि एक साथ मिला दिया जाय तो

उस हालत में सफेद रंग बन जायगा। परीक्षा करना चाहो तो, एक गोल मोटे कागज पर इन रङ्गों को लगातार कतारों में लगाकर खूब जोर से घुमाते रहो, तब उन रङ्गों के बदले में केवल सफेद रङ्ग दिखाई पड़ेगा। केवल, सूर्य के रंग की तरह विशुद्ध रङ्ग यहाँ नहीं मिलता, इसीलिए जितनी सफेदी होनी चाहिये, उतनी सफेदी नहीं दिखाई पड़ती। इसी प्रकार सूर्य के प्रकाश के विभिन्न रंगों की तरङ्गें एक साथ मिलकर एक ही समय में तुम्हारी आँखों में आघात कर रही हैं, इसी कारण तुम यह शुभ्र प्रकाश देख रहे हो। तरह-तरह की चीजें तरह-तरह के रंगों की हैं—इसका कारण क्या है। इसका कारण यह है—एक-एक चीज सूर्य किरण के एक-एक रंग की तरङ्गों को अपने भीतर ग्रहण नहीं कर सकती। मान लो, गुलाब का फूल सूर्य के प्रकाश के सभी रङ्गों को ग्रहण कर सकता है, केवल लाल रंग को ग्रहण नहीं कर सकता। इसीलिए लाल रंग गुलाब फूल के पास से लौट आता है। इसलिए हम लोग लाल रंग को ही देख सकते हैं, और किसी रंग को हम नहीं देख सकते, इसीलिए हम गुलाब को लाल कहते हैं। इसी प्रकार वृक्ष की पत्तियाँ सूर्य के अन्य रंगों की तरङ्गों को अपने भीतर पकड़ कर, केवल हरे रंग की तरङ्गों को लौटा देती हैं, वहीं तरङ्गे वापस आकर जब हमारी आँखों पर आघात करती हैं, तब हम हरा रंग देख पाते हैं।

सफेद कपड़ा सूर्य के किसी रंग की तरंगों को अपने भीतर प्रवेश करने नहीं देता, किन्तु काला कपड़ा समूचे को ही अपने भीतर प्रवेश करने देता है, किसी भी रंग को वह वापस नहीं भेजता। वृक्ष के पत्ते या फूल जिन तरङ्गों को अपने भीतर ग्रहण कर रख देते हैं, उनकी ही सहायता से वे अपने आहार के निमित्त इसे तैयार करते हैं और भोजन को हजम करते हैं।

सूर्य किरणों में जिस प्रकार प्रकाश की तरङ्गे हैं, उसी प्रकार उत्ताप की भी तरङ्गे हैं, प्रकाश जिस तरह तरङ्ग ही हैं, उत्ताप भी उसी तरह तरङ्ग ही हैं। प्रकाश तरङ्गों की तरह उत्ताप की तरङ्गे भी दिखाई नहीं पड़ती। सूर्य के उत्ताप की तरङ्गे यद्यपि अदृश्य होकर पृथ्वी के ऊपर आती रहती हैं, तथापि उनको द्वारा ही हमारी इस पृथ्वी के अधिकांश कार्य सम्पन्न हो रहे हैं। उत्ताप की ये ही तरंगे पृथ्वी में आकर जल को वाष्प परिणत करती हैं। जलीय वाष्प हवा से हलका होता है, इसीलिए वह ऊपर उठ जाता है। वहाँ पहुँच कर वह वाष्प ठंढक से जम जाता है और छोटे-छोटे जल कणों को उत्पन्न करता है। तब जल की कणें वायु में चलती रहती हैं। और वे ही फिर वृष्टि के आकार में पृथ्वी पर गिर कर नद-नदियों को बना देती हैं। उत्ताप की ये तरंगे पहले तो मिट्टी को गरम बना देती हैं, इस गरम मिट्टी के संस्पर्श से हवा गरम और हलकी हो जाती है, इसी कारण तूफान उठा करते हैं। ये तरंगें भूमि को उत्तप्त कर, उद्भि जाति को बढ़ाते रहते हैं।

हम अपने शरीर का उत्ताप दो उपायों से प्राप्त करते रहते हैं। पहली बात यह है कि ये तरंगें हमारे शरीर पर आघात करती हैं, इसीलिए यह होता है। दूसरी बात है कि उद्भिदों के पास से हम इसे पाते रहते हैं। उद्भिदों से हम किस उपाय से उत्ताप पाते हैं, यह मैं बता रहा हूँ। पहले बता चुका हूँ कि उद्भिद सूर्य का प्रकाश और उत्ताप की तरंगें अपने शरीर की रक्षा के लिए व्यवहार में आती हैं। हम या तो उन्हीं उद्भिदों को खाते हैं, अथवा जो सब जन्तु उन उद्भिदों को खाते हैं, उनको ही हम खाते हैं। जब हमारा वह आहार पच जाता है, तब उद्भिद ने जिस उत्ताप को सूर्यकिरणों से पहले ग्रहण करके संचय कर रक्खा था, वही फिर हमारे शरीर

में वापस आ जाता है और प्रवेश कर हमारी जीवन-रक्षा करता है। वृक्षों से ही पत्थर के कोयले की उत्पत्ति होती है। वृक्षों ने किसी काल में सूर्य से जिस उत्ताप को ग्रहण किया था, वही उत्ताप अब कोयले में छिपा हुआ है। इस कोयले की सहायता से रेलगाड़ी, जहाज और पृथ्वी के कितने ही शत संख्यक यन्त्रों का चलना जारी है।

प्रकाश और उत्ताप

प्रकाश सूर्य का हो या किसी अन्य ज्वलन्त वस्तु का ही हो—ईथर की तरंग रूप में एक स्थान से अन्य स्थान को भेजा जाता है। सूर्य को परित्याग करने और हमारे नेत्रों में पहुँचने के बीच, प्रकाश ईथर तरंगाकार में स्थित रहता है। किन्तु यह प्रकाश क्या है? किस गुण के प्रभाव से सूर्य अथवा कोई दूसरी ज्वलन्त वस्तु प्रकाश का आधर बनती है? किस गुण के प्रभाव से एक ज्वलन्त वस्तु ईथर को तरंगित कर सकती है, और अन्यान्य वस्तुएँ जो अन्धकार में दिखाई नहीं पड़ती, वे नहीं कर सकतीं? अँधेरी रात में लोहे का एक गोला दिखाई नहीं पड़ता, किन्तु सभी यह जानते हैं कि उत्ताप देते-देते यह क्रमशः लाल हो जाता है और फिर तो हमारी आँखों को दिखाई पड़ने लगता है। यह गोलक पहले अन्धकार में सम्पूर्ण रूप से अदृश्य था, उत्ताप देते-देते इसमें ऐसा परिवर्तन हो गया कि, यह हठात् रक्तवर्ण धारण कर हमारे नेत्रों को दिखाई पड़ने लगा। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए पहले यह जान लेना आवश्यक है कि पदार्थ-समूह का गठन किस तरह हुआ है।

विविध प्रमाणों के द्वारा पण्डितों ने यह बात जान ली है कि, ये सभी पदार्थ पृथक्-पृथक् कुछ अति छोटे-छोटे कणों के

समष्टि मात्र हैं। वे सब कणाएँ आकर्षण के नियमों से आस-पास से दलबद्ध होकर पड़ी हुई हैं, यह तो ठीक ही है, किन्तु वे एकदम एक-दूसरे के शरीर से सटी हुई नहीं हैं। उनके बीच-बीच फाँक है। ये कण इतने छोटे-छोटे हैं कि, हम इनको अपनी आँखों से देख नहीं पाते, किन्तु जब ये अनेक एक साथ मिले हुए रहते हैं, तभी हम उनको, वस्तु विशेष में परिणत रहने के कारण देख पाते हैं। इस कण को हम अणु नाम से पुकारते हैं। फिर इन अणुओं को किसी प्रक्रिया के द्वारा विभक्त कर देने से उनकी अपेक्षा और भी छोटा अणु मिल जाता है, इसके बाद वह फिर किसी तरह भी विभक्त नहीं किया जा सकता। हम उसको परमाणु कहते हैं।

अब यह जान लेने की चेष्टा की जाय कि, ये सब अणु और परमाणु, किस प्रकार ठहरे हुए हैं, ये क्या स्थिर हैं अथवा गति-विशिष्ट हैं। विज्ञानविद् पण्डितों ने अनेक प्रमाणों के द्वारा निर्णय किया है कि पदार्थ के अणु और परमाणु स्थिर नहीं हैं, वे गति विशिष्ट हैं; अति द्रुतगति से ये विकम्पित हो रहे हैं। अणु राशि के प्रकम्पन से पदार्थ में उत्ताप की उत्पत्ति होती है। कोई भी वस्तु बिलकुल ही उत्ताप शून्य नहीं होती, उत्ताप-संयोग से पदार्थ का अणु-प्रकम्पन क्रमशः बढ़ता जाता है अर्थात् वे पूर्वापेक्षा अधिक स्थानों को छेंक कर हिलते रहते हैं। अणु-प्रकम्पन जितना ही बढ़ता रहता है वे उतने ही ऊष्ण और ऊष्णतर होते जाते हैं।

मान लो लोहे का एक गोला ऐसा है जो तुम्हारे शरीर की अपेक्षा न तो ठंढा ही है और न तो गरम ही है, अर्थात् गोले का अणु जिस स्थान को छेंककर और जिस वेग से हिलता है, तुम्हारे शरीर का अणु ठीक उतने ही स्थान को छेंक कर और उसी वेग से हिलता रहता है और काँपता रहता है। अब यदि उत्ताप प्रदान

कर, इस गोले को पूर्वापेक्षा गरम करके इसके पास तुम अपना हाथ ले जाओगे, तो तुम देखोगे, तुम्हारे हाथ में ताप लग रहा है। तुमने गोले को स्पर्श नहीं किया, तो फिर तुम्हारे हाथ में ताप क्यों लगता है। बताया गया है कि, ईथर सर्वत्र और सभी पदार्थों के भीतर विद्यमान है। उत्ताप देते-देते गोले का अणु-प्रकम्पन जितना ही बढ़ता जाता है, ईथर-सागर में उतनी ही प्रबल और प्रबलतर तरंगें उठती रहती हैं। यह तरंगमाला चारो तरफ दौड़ पड़ती है, और निकट में यदि कोई शीतल वस्तु रहती है तो ईथर उसके मध्य में स्थित अणुओं को अपनी गति का कुछ अंश देकर उनके प्रकम्पन को बढ़ा देता है, अर्थात् वह शीतल वस्तु क्रमशः ऊष्ण हो जाती है। ऐसी कोई बात नहीं है कि, जिस किसी भी वस्तु की यही दशा होगी। ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं जिनके अणु ईथर की गति को ग्रहण न कर, निर्विघ्न रूप से उसे अपने भीतर से जाने देती हैं। जो भी हो, मनुष्य का हाथ ऐसी वस्तु नहीं है। इसी कारण गरम गोला सामने रख देने से उसका अणु-प्रकम्पन बढ़ जाता है, और हम अपनी स्पर्श-स्नायु की सहायता से हाथ में ताप अनुभव करते हैं। उत्ताप देते-देते वह गोला किस कारण रक्तवर्ण धारण कर दिखाई पड़ने लगता है उसका कारण मैं बता रहा हूँ।

पहले बताया जा चुका है कि, उत्ताप प्रदान करने से पूर्ववर्ती प्रकम्पन बढ़ जाते हैं। किन्तु केवल यही बात होती है, ऐसा न समझ लेना, पूर्ववर्ती प्रकम्पनों के बढ़ते जाने के साथ-साथ नूतन और द्रुततर कम्पनों की उत्पत्ति होती है। नूतन कम्पनों को द्रुततर कहकर मैं यहा समझा देना चाहता हूँ कि, पूववर्ती कम्पनों की अपेक्षा ये अल्प ही समय में सम्पादित हो जाते हैं। उत्ताप देते-देते जब एक विशेष मात्रा में द्रुत कम्पन उत्पन्न हो जाता है, तब वह

गोला लाल हो जाता है। कम्पन जनित यह ईथर-तरंग जब हमारी आँखों के पीछे विद्यमान दृष्टि-स्नायु-जाल को उत्तेजित करती है, तब हम लाल रंग को देखने लगते हैं। उत्ताप देते-देते नूतन-नूतन द्रुततर कम्पन उत्पन्न होते रहते हैं और क्रमशः पीत-हरित्-नील वायलेट इत्यादि नयी किरणें उत्पन्न होती रहती हैं।

इस अवस्था में अब हमने यह देख लिया कि, प्रकाश और उत्ताप दोनों ही, ईथर-तरंगाकार में एक वस्तु से दूसरी वस्तु में जाते हैं। नदी के सोते के बीच यदि एक कपड़े का व्यवधान दे दिया जाय तो उस हालत में, नदी की तरंग का कुछ अंश उस कपड़े का व्याघात पाकर वापस चला आता है, कुछ अंश उस कपड़े में शोषित होकर उसको भिगा देता है, और कुछ अंश उस कपड़े को भेद कर चला जाता है। इसी प्रकार उत्ताप और आकाश की तरंग ज्योंही किसी वस्तु पर आघात करती है, त्योंही वह प्रायः ही तीन भागों में विभक्त हो जाती है। जिस तरफ से तरंगें आ रही थीं, आघात लगने के साथ ही कुछ तरंगे उसी तरफ वापस चली जाती हैं। उन तरंगों को प्रतिफलित कहा जाता है। जो तरंगें वस्तु के भीतर प्रवेश करती हैं, (सभी वस्तुओं में ईथर विद्यमान है) उनमें से कुछ तो उस वस्तु के अणु-प्रकम्पन को बढ़ाकर उसको गरम बना देती हैं (इन तरंगों को शोषित होने वाली कहते हैं) और दूसरी बाहर चली जाती हैं। वायु की ही तरह ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं जिनके ऊपर आघात करने से अधिकांश तरंगें बाहर हो जाती हैं, बहुत ही अल्प मात्रा में वे प्रतिफलित होती हैं और प्रायः कुछ भी शोषित नहीं होतीं। उज्ज्वल धातुओं पर आघात करने से अधिकांश तरंगें ही प्रतिफलित होती हैं, अल्प मात्रा में वे शोषित होती हैं, किन्तु कुछ भी बाहर नहीं निकल पातीं। दरवाजों और खिड़कियों के

ऊपर आघात करने से अधिकांश तरंगें ही शोषित हो जाती हैं, अल्प ही प्रतिफलित होती हैं, किन्तु कुछ भी बाहर नहीं जा सकतीं। फिर ऐसी भी अनेक वस्तुएँ हैं जो उत्ताप-तरंगों को ग्रहण कर सकती हैं, प्रकाश-तरंगों को ग्रहण नहीं कर सकतीं; फिर कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं जो प्रकाश-तरंगों को शोषित करती हैं और उत्ताप-तरंगों को निर्विघ्न रूप से अपने आपको अतिक्रम करके चले जाने देती हैं। फिर एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न तरंगों में से किसी को शोषित करती है, फिर किसी को छोड़ देती है। एक लाल रंग का कांच केवल लाल रंग की तरंग को छोड़ देता है, एक नील वर्ण का काँच केवल नीली तरंगो को छोड़ देता है, दूसरे जितने हैं वे शोषण करते हैं। फिर जिस प्रकार लाल रंग का प्रकाश है उसी प्रकार विभिन्न वर्णों की उत्ताप तरंगें भी हैं। एक श्वेत काँच-फलक सूर्य की उत्ताप-तरंगों को प्रायः छोड़ देता है, किन्तु ज्वलन्त अंगार के उत्ताप को और पृथ्वी का जो उत्ताप विकिरण करता है, उन सभी को शोषित कर लेता है। चूल्हे के सामने बैठने से शरीर में ताप लगेगा, किन्तु एक काँच-फलक का व्यवधान देकर बैठ जाने से देखोगे कि शरीर में ताप न लगेगा। फिर भी काँच के बीच से धूप का ताप आता रहता है। तुम लोग शायद ऐसा समझ गये होगे कि दिन के समय दरवाजों और खिड़कियों को बन्द कर देने से कमरे में अन्धकार क्यों छा जाता है। दीवाल खिड़कियाँ आदि ईथर की गति को छीन लेती हैं। ईथर-तरंगों को अपने-आपको अतिक्रम करके जाने नहीं देतीं। दरवाजे को बन्द न करके यदि काँच की किवाड़ों को बन्द कर देते हो, तो कमरे में प्रकाश देखोगे, क्योंकि पहले बता चुका हूँ कि काँच प्रकाश-तरंगों को छोड़ देता है। और एक बात बताना चाहता हूँ, रात्रि में हम क्यों सूर्य का प्रकाश नहीं पाते। हमारी यह पृथ्वी गोल